प्रेक्षाध्यान

चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा

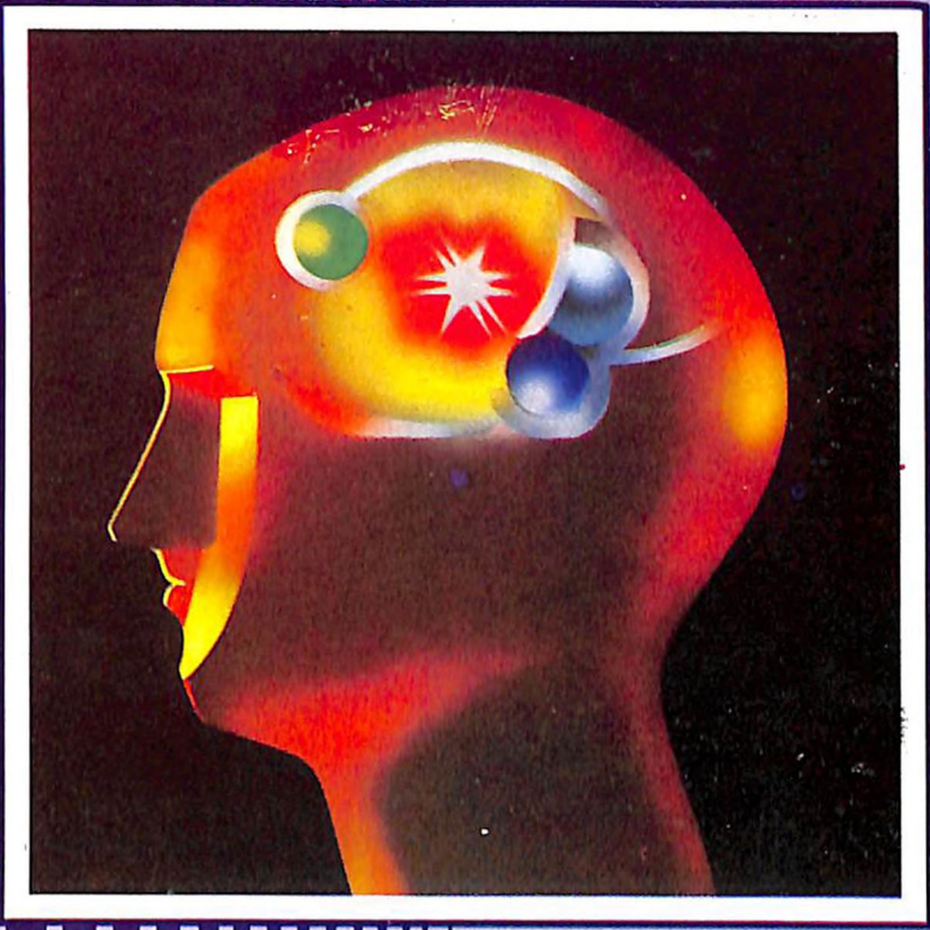

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती प्रकाशन

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

जीवन-विज्ञान ग्रन्थमाला—८

प्रेक्षा-ध्यान : चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

सम्पादक : मुनि महेन्द्र कुमार
जेठालाल एस. झवेरी

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
लाडनूं-३४१३०६ (राजस्थान)

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2004

मूल्य : १५.०० रुपये

मुद्रक : सन्मति प्रिंटिंग सर्विसंज, शाहदरा, दिल्ली-32

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

प्रकाशकीय

प्रेक्षा-ध्यान ध्यानाभ्यास की एक ऐसी पद्धति है, जिसमें प्राचीन दार्शनिकों से प्राप्त बोध एवं साधना-पद्वति को आधुनिक वैज्ञानिक संदर्भों में प्रतिपादित किया गया है। इन दोनों के तुलनात्मक विवेचन के आधार पर आज युग-मानस को इस प्रकार से प्रेरित किया जा सकता है, जिससे मनुष्य के पाशवी आवेश तिरोहित हों एवं विश्व में अहिंसा, शान्ति और आनन्द के प्रस्थापन के मंगलमय लक्ष्य की संप्राप्ति हो सके।

श्वास-प्रेक्षा, शरीर-प्रेक्षा, दीर्घश्वास-प्रेक्षा, समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा, चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा, लेश्या-ध्यान, कायोत्सर्ग–ये सारी प्रक्रियाएं हैं–रूपान्तरण की; फिर उपदेश देने की जरूरत नहीं होगी कि ऐसा बनो, वैसा बनो, धार्मिक बनो, स्वार्थ को छोड़ो, भय और ईर्ष्या को छोड़ो। यह केवल उपदेश है। केवल उपदेश कारगर नहीं होता। जो उपाय निर्दिष्ट किये गये हैं, उन्हें काम में लेना होगा। स्वयं एक दिन यह स्पष्ट अनुभव होने लगेगा कि रूपान्तरण घटित हो रहा है। धार्मिक वृत्ति का जागरण हो रहा है, क्रोध और भय छूट रहे हैं, माया और लोभ छूट रहे हैं। उन दोषों से छुटकारा पाने के लिए अलग से प्रयत्न करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। वे स्वयं मिटते जाएंगे। इन दोषों को मूलतः नष्ट करने का यही उपाय है।

प्रस्तुत पुष्प में चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा की चर्चा विस्तार से की गई है। हर समझदार व्यक्ति अपना विकास चाहता है और अच्छा बनना चाहता है। परन्तु प्रश्न है–व्यक्तित्व का विकास हो कैसे? वह कौन-सी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है? वह कौन-सा बिन्दु है जहां व्यक्ति अपना रूपान्तरण कर सकता है? व्यक्ति के विकास और रूपान्तरण की प्रक्रिया है–ग्रन्थि-तंत्र के शोधन की प्रक्रिया–चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा।

हमारे शरीर में कुछ ऐसे स्थान हैं, जहां चैतन्य दूसरे स्थानों की अपेक्षा अधिक सघन होता है। उन्हें चैतन्य-केन्द्रों की संज्ञा दी गई है। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा में इन स्थानों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है तथा उन्हें

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

एकाग्रता से अनुभव किया जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से ये स्थान हमारे अन्तःस्रावी ग्रंथियों के स्थान हैं, जो हमारे आचरण, व्यवहार, आदि का नियन्त्रण करती हैं।

ध्यान-साधना की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण कार्य है–व्यक्ति का दृष्टिकोण, व्यवहार और भाव परिष्कृत हो। प्रश्न होता है ये सब मिथ्या क्यों होते हैं? इन पर नियन्त्रण किसका है? कौन इनको संचालित करता है? वैज्ञानिक खोजों ने यह प्रस्थापित किया है कि इन सब पर नियन्त्रण हाइपोथेलेमस (अवचेतक मस्तिष्क का एक भाग) एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का है। इसलिए जब तक चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान केन्द्रित नहीं करेंगे, चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा नहीं करेंगे, तब तक ग्रन्थियों से स्रावित होने वाले स्रावों का परिष्कार नहीं होगा। जब तक ग्रन्थियों के स्राव परिष्कृत नहीं होंगे, तब तक दृष्टिकोण, व्यवहार और भाव का परिष्कार नहीं होगा। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा से चैतन्य-केन्द्र निर्मल बनते हैं और अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों में यथेप्सित परिवर्तन का दृष्टिकोण, व्यवहार और भावों में परिवर्तन किया जाता है।

गुरुदेव श्री तुलसी एवं उनके उत्तराधिकारी आचार्य श्री महाप्रज्ञ के सतत् मार्गदर्शन एवं परिश्रम का ही यह परिणाम है कि आज सहस्र-सहस्र लोग आध्यात्मिक साधना के मार्ग पर चलकर समस्याओं से मुक्त जीवन जीने का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। प्रेक्षा-ध्यान-पद्धति के रूप में मानव-जाति को इन दो महान् अध्यात्म मनीषियों का अनुपम वरदान प्राप्त हुआ है। हमें दृढ़ विश्वास है कि इस सार्वभौम विधि को समझकर साधना करने वाला प्रत्येक व्यक्ति लाभान्वित होगा।

१७ अप्रैल, १९८४
लाडनूं

जेठालाल एस. झवेरी
विभागाधिपति
तुलसी अध्यात्म नीडम

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

भूमिका

वर्तमान युग उद्योगीकरण, शहरीकरण और प्रौद्योगिक विकास का युग है। आज के नागरिक निरन्तर जबरदस्त दबावों और तनावों के बीच जीते हैं। इनके कारण सतत उच्च्य रक्तचाप, अनिद्रा और हृदय रोग जैसे अनेक मनःकायिक रोगों का शिकार उन्हें बनना पड़ता है। जब लोग इन सबसे हताश हो जाते हैं, तो मद्यपान या खतरनाक नशीले पदार्थों की ओर आकृष्ट होते हैं। इन मादक और नशीले पदार्थों से उन्हें केवल एक बार अस्थायी राहत-सी मिलती है, पर अन्ततोगत्वा इन व्यसनों के वे शिकार हो जाते हैं, समस्याएं उलझती हैं। इसलिए स्पष्ट है कि समस्याओं का समाधान मादक-नशीले पदार्थों के सेवन में नहीं, अपितु वृत्तियों के रेचन में तथा आन्तरिक शक्तियों के विकास में है। ध्यानाभ्यास द्वारा व्यक्ति सहज रूप में इन्हें फलित कर सकता है।

आज आम रूप से सभी प्रतिष्ठित एवं निष्णात डॉक्टर ऐसा मानने लगे हैं कि ध्यान और कायोत्सर्ग एक शक्तिशाली उपाय है, जिससे रोग का निवारण और स्वास्थ्य का संरक्षण दोनों किए जा सकते हैं। अब ऐसे अकाट्य वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हुए हैं जो इस बात के साक्ष्य हैं कि ध्यान और कायोत्सर्ग के माध्यम से तनाव-जनित रोगों की रोकथाम एवं निवारण किया जा सकता है। वैज्ञानिक जांच से यह स्पष्ट प्रमाणित हो चुका है कि नियमित ध्यानाभ्यास हमारे शरीर के उस नियन्त्रण तंत्र को प्रभावित करता है जो हमारी स्वस्थ दशा को बनाए रखने के लिए मूलभूत रूप से जिम्मेवार है।

नियमित ध्यानाभ्यास हमारे स्वतः संचालित (अनैच्छिक) नाड़ी संस्थान के दो विभागों–अनुकम्पी और परानुकम्पी तंत्र के बीच आवश्यक संतुलन पैदा करता है तथा उसे बनाये रखता है। ध्यानाभ्यास से प्राप्त लाभ मापे जा सकते हैं और कोई भी व्यक्ति, जो उसको विधिवत् सीख लेता है और नियमित अभ्यास करने के लिए उद्यत रहता है, इन लाभों को प्राप्त कर सकता है। यद्यपि यह मूल्यवान् बात है कि केवल ध्यान के द्वारा औषधियों के सेवन किए बिना अनेक खतरनाक बीमारियों से मुक्त हुआ जा सकता है, फिर भी ध्यान का यह कोई एकमात्र या मुख्य लक्ष्य नहीं है।

क्रोध, आक्रमण, क्रूरता, प्रतिशोध और भय जैसी वृत्तियों और वासनाओं को नियमित करने का साधन है–ध्यान। विवेक चेतना की जागृति और विकास के माध्यम से मनुष्य में भाव-परिष्कार एवं व्यवहार-परिवर्तन घटित

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

कर उसे सही माने में मानव बनाने की प्रक्रिया ही ध्यान है। आधुनिक मनोविज्ञान-विशेषज्ञ विलियम्स जेम्स ने जिन्हें 'आन्तरिक अपूर्णता और विसंगतियां' कहा है, उनका उपचार और अल्पीकरण करने का श्रेष्ठतम साधन है–ध्यान। ध्यान का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार केवल शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति न होकर व्यक्ति की भाव-धारा में से और उसके चिन्तन, वाणी और वर्तन में से सभी बुराइयों का रेचन कर, आध्यात्मिक कल्याण प्राप्त करना है।

वृत्तियों और वासनाओं का उद्भव मस्तिष्क में से नहीं, अपितु अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र के द्वारा होता है। ये वृत्तियां व्यक्ति में केवल इच्छा या कामना ही पैदा नहीं करती, पर साथ ही उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तदनुरूप प्रवृत्ति की भी मांग करती है। सारे आवेग, जो भावतंत्र को संचालित करने वाले बल हैं, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों (जिन्हें हार्मोन कहते हैं) के द्वारा पैदा किए जाते हैं। हार्मोनों का अत्यन्त गहरा प्रभाव हमारी भाव-दशाओं एवं मानसिक रुझानों पर तथा हमारे आचार और व्यवहार पर पड़ता है। बार-बार होने वाली भावनात्मक दबावों की श्रृंखला के परिणाम स्वरूप हमारी भाव-धारा विकृत होती है और आचरण (या व्यवहार) मूढ़ होता है। इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि हमारे व्यक्तित्व के विविध 'मनोवैज्ञानिक पक्षों' (Psychological Factors) पर विवेक चेतना का अधिकार स्थापित करने के लिए हमारे रासायनिक सन्देश वाहकों–हार्मोनों और स्नायु हार्मोनों के संश्लेषण में आवश्यक रूपान्तरण करना आवश्यक होगा।

बायोफीडबैक और अन्य वैज्ञानिक मापक उपकरणों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि ध्यान द्वारा नाड़ी-तंत्र की विद्युत्-प्रवृत्तियों में हम आवश्यक परिवर्तन ला सकते हैं तथा हमारे रासायनिक हार्मोनों और स्नायु-हार्मोनों के संश्लेषण में आवश्यक रूपान्तरण घटित कर सकते हैं। अंतःस्रावी ग्रन्थियां ही हमारे चैतन्य केन्द्र के संवादी स्थान हैं।

चैतन्य केन्द्रों के प्रेक्षा-ध्यान के नियमित अभ्यास से निम्नलिखित दो परिणाम घटित होंगे–

१. मनुष्य की विलक्षण विवेक-शक्ति एवं बौद्धिक चिन्तन की अनूठी क्षमता में वृद्धि होगी।

२. आवेगों और आवेशों तथा वृत्तियों और वासनाओं के उभार मन्द होंगे।

३. इन दो परिणामों का संयुक्त परिणति यह होगी कि इससे व्यक्ति की भाव-धारा में से विकृत्तियां तथा आचरण (या व्यवहार) में मूढ़ता दूर होगी।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

अनुक्रमणिका

१.	**चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा : वैज्ञानिक आधार**	**१-८**
	ग्रन्थियां : स्थान और कार्य	३
	पाइनियल ग्रंथि	४
	पिच्यूटरी ग्रंथि (पीयूष ग्रंथि)	४
	थाइराइड ग्रंथि	५
	पेराथाइराइड ग्रंथि	६
	थाइमस ग्रंथि	६
	एड्रीनल ग्रंथियां	७
	गोनाड्स (काम-ग्रन्थियां)	८
२.	**चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा : आध्यात्मिक आधार**	**६-१५**
	हमारा द्वैतात्मक अस्तित्व	६
	अन्तःस्रावी ग्रंथि-तंत्र	६
	चैतन्य-केन्द्र और ग्रंथियां	१०
	आयुर्वेद और एक्यूपंक्चर	१०
	ज्ञानकेन्द्र और कामकेन्द्र	११
	चेतना का आन्तरिक स्तर	१२
	वृत्ति, प्रवृत्ति और पुनरावृत्ति	१३
	मनुष्य की विलक्षण क्षमता	१४
	कर्मशास्त्रीय व्याख्या	१५
	योगशास्त्र और शरीरशास्त्र	१५
३.	**चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा क्यों ?**	**१६-२१**
	विवेक-चेतना का जागरण	१६
	अन्तःस्रावी तंत्र का सन्तुलन	१६
	वैज्ञानिक उपचार का अधूरापन	१७
	तरंगातीत अवस्था	१८
	अवचेतन मन से सम्पर्क	१६
	चित्त की यात्रा चैतन्य-केन्द्रों पर	१६

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

४.	**चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा : विधि**	**२२-२५**
	क्यूसोस, ग्लैण्ड और चक्र	२२
	जागृत करने की प्रक्रिया	२३
	चैतन्य केन्द्र का विशुद्धीकरण	२५
	विवेक के केन्द्र और वासना के केन्द्र	२५
	विधि	२५
५.	**चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा : निष्पति**	**२६-४०**
	ज्ञान केन्द्र	२६
	शान्ति केन्द्र	२६
	ज्योति केन्द्र और दर्शन केन्द्र	२७
	विशुद्धि केन्द्र	२९
	आनन्द केन्द्र	३०
	तैजस केन्द्र	३०
	स्वास्थ्य केन्द्र और शक्ति केन्द्र	३१
	ब्रह्म केन्द्र	३२
	अप्रमाद केन्द्र	३२
	प्राण केन्द्र	३३
	चाक्षुष केन्द्र	३३
	उपसंहार	३३
	शारीरिक निष्पत्ति	३३
	मानसिक निष्पत्ति	३४
	आध्यात्मिक निष्पत्ति	३४
	आदतों का परिवर्तन	३४
	अन्तःकरण का परिवर्तन	३५
	चैतन्य-केन्द्र, करण और अवधिज्ञान	३६
	विविध आकार के करण	३६
	चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा के तीन परिणाम	३६
	चैतन्य-केन्द्रों का निर्मलीकरण	३७
	आनन्द केन्द्र का जागरण	३७
	शक्ति का जागरण	३८

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

१

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा : वैज्ञानिक आधार

प्रत्येक प्राणी के जीवन के अस्तित्व तथा शारीरिक क्रियाओं का संचालन इस बात पर आधारित है कि उसके शरीर में अनेक तन्त्र एक "टीम" (मिलजुल कर काम करने वाले दल) के रूप में विविध क्रिया-कलापों को निष्पादित करे। एक ही प्रकार के कार्यों की श्रृंखला को निष्पादित करने वाले अनेक अवयवों के समूह को "तन्त्र" कहा जाता है। नाड़ी-तन्त्र और अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र—ये दो शरीर के प्रमुख नियन्त्रक एवं संयोजक तन्त्र हैं। वे शरीर के अन्य सभी तन्त्रों का नियन्त्रण एवं संयोजन करते हैं तथा उनके माध्यम से समग्र शरीर के क्रिया-कलापों का विलक्षण पारस्परिक-अनुबन्ध है और दोनों मिलकर सर्वांगीण रूप से शरीर-यन्त्र को संचालित करते रहते हैं। इन दोनों का पारस्परिक अनुबन्ध इतना विलक्षण है कि नाड़ी-तन्त्र और ग्रन्थि-तंत्रों के अवयवों को एक अखण्ड तन्त्र के ही अंगरूप माना जाने लगा है, जिसे नाड़ी-ग्रन्थि-तन्त्र (न्यूरो एण्डोकाइन सिस्टम) की संज्ञा दी गई है। अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र अपने प्रभावों का निष्पादन रासायनिक नियन्त्रकों के स्रावों (हार्मोन) के माध्यम से करता है। ये हार्मोन न केवल प्रत्येक शारीरिक क्रिया में भाग लेते हैं, अपितु व्यक्ति की मानसिक दशाओं, स्वभाव और व्यवहार पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। ये हार्मोन मनुष्य के भीतरी आवेशों और आवेगों तथा वृत्तियों और वासनाओं के अत्यन्त शक्तिशाली व प्रेरक बलों को उत्पन्न करने वाले प्रमुख स्रोत हैं। वृत्तियां आदि न केवल कामनाओं को उत्पन्न करती हैं अपितु उनकी पूर्ति के अनुरूप प्रवृत्ति के लिए व्यक्ति को बाध्य करती हैं। प्रेम, घृणा, भय आदि भाव अन्तःस्रावी स्रोतों द्वारा जनित आवेग हैं।

बहुत लम्बे समय तक यह अवधारणा रही कि मस्तिष्क ही मनुष्य की चैतन्य-ऊर्जा का स्रोत है तथा वही समस्त भावावेगों की उत्पत्ति स्थान है। अन्तःस्रावी ग्रन्थि-शास्त्र (विज्ञान की यह शाखा, जो अन्तःस्रावी ग्रन्थि संस्थान का अध्ययन करती है) के क्षेत्र में पिछले वर्षों में हुई उल्लेखनीय

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

प्रगति ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि हमारे सारे भावावेश और भावावेग—वृत्तियां और वासनाएं हमारे अन्तःस्रावी ग्रन्थि तन्त्र की ही अभिव्यक्तियां हैं।

मनुष्य की जितनी आदतें बनती हैं, उनका उद्‌गम स्थान है ग्रन्थितन्त्र। हमारे शरीर के दो मुख्य तन्त्र हैं—एक है नाड़ी-तन्त्र और दूसरा है ग्रन्थि तन्त्र। नाड़ी-तंत्र में हमारी सारी वृत्तियां अभिव्यक्त होती हैं, अनुभव में आती हैं और फिर व्यवहार में उतरती हैं। व्यवहार, अनुभव या अभिव्यक्तिकरण—ये सब नाड़ी-तन्त्र के काम हैं, किन्तु आदतों का जन्म, आदतों की उत्पत्ति ग्रन्थि-तन्त्र में होती है। वे ही आदतें मस्तिष्क के पास पहुंचती हैं, अभिव्यक्ति होती हैं और व्यवहार में उतरती हैं।[१] इसलिए विज्ञान के क्षेत्र में एक शब्द का प्रचलन हुआ है—न्यूरो-एण्डोक्राइन सिस्टम। इसका अर्थ है ग्रन्थि-तन्त्र और नाड़ीतन्त्र का संयुक्त कार्य।

अन्तःस्रावी ग्रन्थितन्त्र और नाड़ी-तन्त्र का अन्योन्य सम्बन्ध निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो सकता है—किसी युवक के सामने कोई सुन्दर युवती उपस्थित होती है। उसके सामने आते ही, उसके नाड़ी-तन्त्रीय संवेदन (चाक्षुष संवेदन) विद्युत् आवेग के द्वारा उसके मस्तिष्क में रहे हुए केन्द्र—हाइपोथेलेमस के अमुक भाग को उत्तेजित करेंगे।

उसके परिणामस्वरूप हाइपोथेलेमस पिच्यूटरी ग्रन्थि के अग्र-भाग को सक्रिय करेगा। अब पिच्यूटरी की बारी आती है—वह अपनी ओर से काम ग्रन्थियों को गोनोडोट्रोफीन नामक हार्मोन भेजकर उन्हें सक्रिय करती है। तब उस युवक की काम-ग्रन्थियां अपने लैंगिक हार्मोन—एन्ड्रोजन का स्राव करती हैं, जो रक्त के माध्यम से मस्तिष्क में पहुंचकर नाड़ी-तन्त्र को प्रभावित करता है। उसके फलस्वरूप हृदय और नब्ज की गति में वृद्धि हो जाती है, रक्तचाप बढ़ जाता है, मांसपेशियों में तनाव पैदा हो जाता है और काम-भावना उद्दीप्त हो जाती है।

जबकि शरीर के अन्य तन्त्रों की संरचना प्रायः संलग्न रूप से पाई जाती है, अन्तःस्रावी तन्त्र की ग्रन्थियां शरीर के अलग-अलग द्वीप की तरह बिखरी हुई पाई जाती है। मुख्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियां ये हैं—पाइनियल,

---

१. जब किसी पुरुष को समारोह या पार्टी में शामिल होना होता है, जहां महिलाओं की उपस्थिति भी होती है, तब उस स्थल पर पहुंचने पर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को प्रभाव पूर्ण बनाने के लिए कुछ क्रियाएं करता है, जैसे अपनी वेशभूषा को थोड़ा संवार लेना, टाई को ठीक-ठाक कर लेना, बालों को कंघी या हाथ से संवार लेना आदि। ये क्रियाएं व्यक्ति के प्रायः कोई भाग नहीं होता। वस्तुतः यह सारी क्रिया पिच्यूटरी द्वारा स्रावित गोनाडोट्रोफीन नामक हार्मोन के कारण होती है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

पिच्यूटरी (पीयूष), थाइराइड, पेरा-थाइराइड, एड्रीनल, लैंगरहान्स के द्वीप तथा गोनाड्स (काम-ग्रन्थियां)। ये सब ग्रन्थियां अपेक्षाकृत काफी छोटी और नलिका-विहीन होती हैं। रक्त द्वारा इन्हें विपुल मात्रा में पोषक सामग्री उपलब्ध होती है। इन ग्रन्थियों के स्राव जैव-रासायनिक यौगिक (आर्गेनिक केमिकल कम्पाउण्ड्स) के रूप में होते हैं। ये "हार्मोन" कहलाते हैं। से सीधे ही रक्त-प्रवाह में छोड़े जाते हैं। रक्त-प्रवाह के माध्यम से वे पूरे शरीर में प्रवाहित होते हैं और उत्पत्ति स्थान से सुदूर स्थानों तक अपना कार्य कर सकते हैं। वे स्वल्प मात्रा में भी अधिक प्रभावशाली होते हैं। प्राणी की वृद्धि और विकास, काम-प्रवृत्तियां, गर्भाधान और जनन, चयापचय आदि महत्वपूर्ण कार्यों का नियमन करने का दायित्व इन स्रावों पर होता है।

इस तन्त्र के हार्मोनों के स्रावों का नियमन अधिकांशतः पिच्यूटरी द्वारा होता है। पिच्यूटरी द्वारा स्रावित विविध प्रकार के हार्मोन रक्त प्रवाह के माध्यम से अन्य ग्रन्थियों तक पहुंच कर उन्हें एक निश्चित प्रकार के हार्मोन को निश्चित मात्रा में स्रावित करने के लिए उत्तेजित करते हैं। ये स्राव पुनः पिच्यूटरी तक पहुचते हैं और यदि उत्पादन आवश्यकता से अधिक हो तो उत्तेजक रसायनों का निरोध किया जाता है। इस प्रकार फीड-बैक पद्धति और रासायनिक अन्तःसंचार के माध्यम से पिच्यूटरी अन्य ग्रन्थियों के स्रावों का नियमन करती हैं।

ग्रन्थियां : स्थान और कार्य

अन्तःस्रावी तन्त्र की प्रत्येक ग्रन्थि का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है?

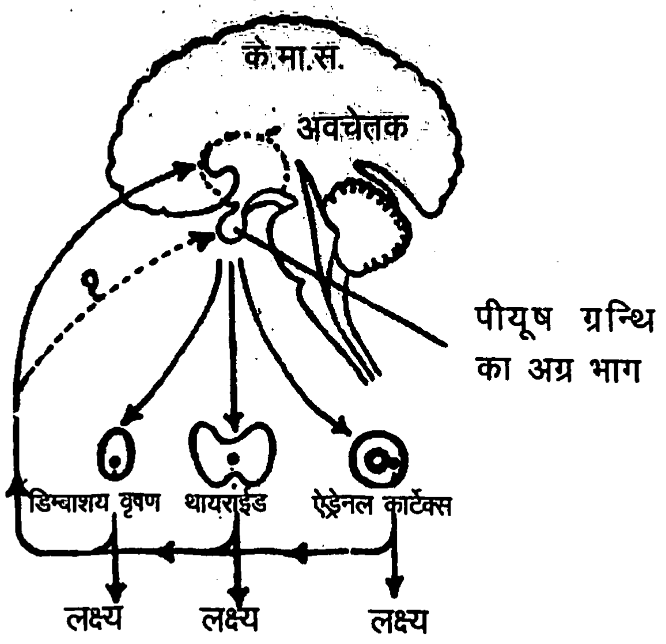

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

अन्तःस्त्रावी ग्रंथियां और उनके स्थान

१. पाइनियल ग्रन्थि

इस ग्रन्थि का स्थान मस्तक के मध्य में होता है। यह परिमाण में बहुत छोटी होती है—लगभग गेहूं के दाने जितनी। पिच्यूटरी ग्रन्थि के पीछे की ओर थोड़ी-सी ऊपर यह ग्रन्थि मस्तिष्क के निचले हिस्से में एक छोटी सी गुफा के आकार वाले छिद्र में छिपी हुई रहती है। इस ग्रन्थि का एक महत्वपूर्ण कार्य गोनाड्स (काम-ग्रन्थियों) के स्त्रावों का निरोध करना है। इस प्रकार यह ग्रन्थि शैशवावस्था में व्यक्ति की काम-वृत्ति का नियमन कर उसे यौवन प्राप्ति तक उससे मुक्त बनाए रखती है। यौवन-प्राप्ति के बाद यह ग्रन्थि यौवनोचित बयस्कता को लाने में सहायक बनती है। प्रयोगों के आधार पर कुछ ऐसे प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं कि इसके स्त्राव पिच्यूटरी के ACTH नामक स्त्राव का निरोध कर अप्रत्यक्ष रूप से एड्रीनल के स्त्रावों का नियमन करने में सहायक होते हैं।

२. पिच्यूटरी ग्रंथि (पीयूष ग्रंथि)

यह ग्रन्थि मस्तिष्क के लगभग मध्य में स्थित होती है। उसका स्थान मस्तिष्क के निचले छोर पर तथा नाक के मूल भाग के पीछे की ओर होता है।

मस्तिष्क के नीचे एक छोटी-सी प्याली या पालने में यह ग्रन्थि लटकती-सी रहती है। यह मटर के दाने जितनी होती है।

इस ग्रन्थि के दो खण्ड हैं—१. अग्र खण्ड, २. पृष्ठ खण्ड। अग्र खण्ड

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

का हिस्सा सम्पूर्ण अन्तःस्रावी ग्रन्थि तन्त्र का नायक या अग्रणी माना जाता है। यह हिस्सा कम से कम नव प्रकार के विभिन्न हार्मोनों का स्राव करता है और जीवन के अनेक महत्वपूर्ण क्रिया-कलापों पर अपना प्रभाव डालता है। इसके प्रभाव से शरीर का कोई भी भाग अछूता नहीं है। थाइराइड, एड्रीनल, कार्टेक्स तथा गोनाड्स को प्रेरित, निरोध करने वाले हार्मोनों के स्राव पिच्यूटरी के अग्र भाग से होते हैं।

पिच्यूटरी के पृष्ठ भाग से निकलने वाले स्राव वस्तुतः तो उसके निकटवर्ती हायपोथेलेमस में उत्पन्न होते हैं। वहां के पृष्ठ भाग में आते हैं, संग्रहीत होते हैं और शायद बहुत परिवर्तन के साथ आवश्यकतानुसार शरीर के विभिन्न भागों तक पहुंचते हैं।

३. थाइराइड ग्रंथि

थाइराइड ग्रन्थि दो पिण्डों से बनी हुई है। स्वर-यंत्र के समीप श्वासनली के ऊपर के छोर पर यह ग्रन्थि आसीन है। इन दो पिण्डों को जोड़ने वाली एक संकड़ी पट्टी होती है, जो टेंटुआ (कण्ठमणि) के ठीक नीचे होती है। इस ग्रन्थि को अत्यधिक विपुल मात्रा में रक्त की आपूर्ति की जाती है। उदाहरणार्थ–गुर्दे की अपेक्षा इसे ४ गुना अधिक रक्त मिलता है।

पेराथाइराइड, थाइराइड और थाइमस ग्रंथियां एवं स्थान

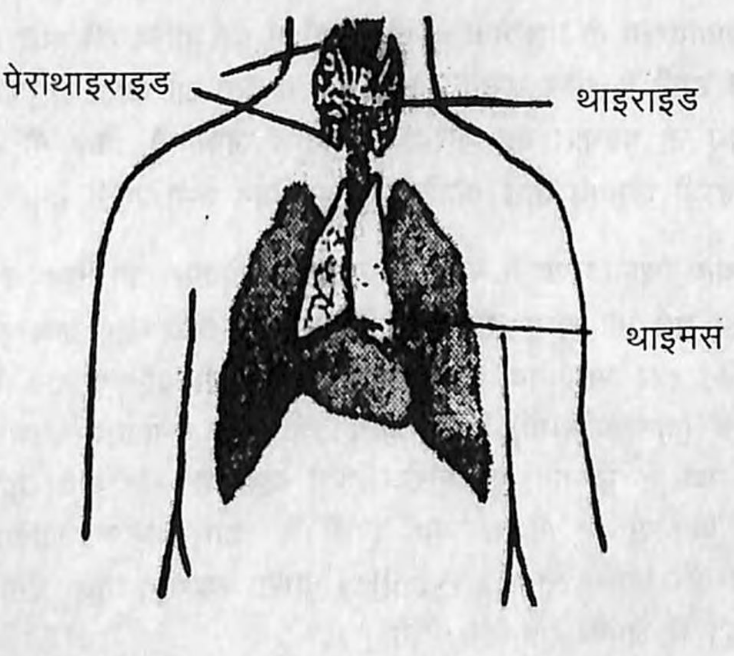

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

इस ग्रन्थि के मुख्य हार्मोन का नाम "थाइरोक्साइन" है। विपुल मात्रा में आयोडीन के अतिरिक्त लोहा, आर्सेनिक व फास्फोरस की कुछ मात्रा इसमें होती है। यह नाड़ियों तथा मस्तिष्कीय ऊतकों के निर्माण में काम आता है। थाइराइड ग्रन्थि मूलतः शरीर में ऊर्जा उत्पादन का अवयव है। चयापचय की मात्रा तथा व्यक्ति में सक्रियता की तीव्रता को निर्धारित करने का मुख्य दायित्व इस ग्रन्थि पर है। पाचन क्रिया में भी यह ग्रन्थि सहायक होती है। इसके स्राव शरीर में जमा होने वाले विषों का प्रतिकार करते हैं। मस्तिष्कीय सन्तुलन को बनाए रखने का दायित्व भी इस पर है। शरीर में होने वाली वसा, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट की चयापचय-क्रिया को नियंत्रित करने में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। गलगण्ड की बीमारी की रोक-थाम या निवारण करने के लिए यह ग्रन्थि उत्तरदायी है।

४. पेराथाइराइड

पेराथाइराइड की चार छोटी-छोटी अण्डाकार ग्रन्थियां होती हैं। ये थाइराइड ग्रन्थि के दोनों पिण्डों में ऊपर-नीचे जड़ित सी होती हैं। इन ग्रन्थियों के हार्मोन 'पेराथोर्मोन' कहलाते हैं। इसके प्रभाव से शरीर के केल्शियम की मात्रा निश्चित होती है।

५. थाइमस ग्रन्थि

यह ग्रंथि दोनों फेफड़ों के बीच में थोड़ी-सी ऊपर की तरफ होती है। शैशवावस्था के प्रारंभिक दो-तीन वर्षों में इस ग्रन्थि की वृद्धि बहुत तेज गति से होती है, फिर उसके विकास में मन्दता आ जाती है तथा २० वर्ष की आयु के पश्चात् वह धीरे-धीरे सिकुड़ जाती है, फिर भी स्राव पैदा करने वाली उसकी कुछ कोशिकाएं आजीवन बनी रहती हैं।

यह शैशवावस्था में बच्चे के शारीरिक विकास का नियमन करती है तथा १४ वर्ष की आयु तक इस विकास का अधिकतर क्रम समाप्त हो जाता है। इस आयु तक उसका कार्य है—दूसरी ग्रन्थियों को—विशेषतया गोनाड्स (काम-ग्रन्थियों) को—सक्रिय नहीं होने देना तथा उसके कारण यौवनावस्था के उन्मादों का निरोध होता रहता है। यह ग्रन्थि मस्तिष्क के सम्यग् विकास में भी सहायक होती है तथा लसिका-कोशिकाओं के विकास में अपने स्रावों (T-cells) द्वारा सहयोग कर रोग-निरोधक कार्यवाही में अपना योगदान देती है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

६. एड्रीनल ग्रन्थियां

एड्रीनल ग्रन्थियां जोड़े के रूप में होती हैं। उनका आकार त्रिकोणाकार टोपी जैसा होता है। ये गुर्दे के ऊपर के भाग पर स्थित होती हैं। प्रत्येक एड्रीनल के दो खण्ड होते हैं—कार्टेक्स या बाह्य हिस्सा तथा मेडूला या भीतरी हिस्सा।

कार्टेक्स

इन ग्रन्थियों का अधिकांश द्रव्य कार्टेक्स में होता है। इन ग्रन्थियों से गुजरने वाले रक्त की मात्रा इनके परिमाण के अनुपात में बहुत अधिक है। तीन दर्जन से भी अधिक प्रकार के स्रावों को पैदा करने वाली ये ग्रन्थियां अन्य सभी ग्रन्थियों की अपेक्षा संभवतः सबसे अधिक संख्या में स्रावों का उत्पादन करती हैं। इनमें से अनेक स्राव जीवन के लिए अनिवार्य होते हैं। वे स्राव मस्तिष्क तथा प्रजनन-अवयवों के स्वस्थ विकास को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इनमें मानसिक एकाग्रता तथा शारीरिक सहनशीलता का विकास भी होता है। इन स्रावों के प्रभाव से शरीर की स्नायविक तथा मांसपेशीय संरचना स्वस्थ और बलवान होती हैं।

मेडूला

एड्रीनल मेडूला का समस्त क्रियाकलाप अनुकंपी नाड़ी-तंत्र के साथ

एड्रीनल, पेनक्रियाज, गोनाड्स ग्रन्थियां एवं स्थान

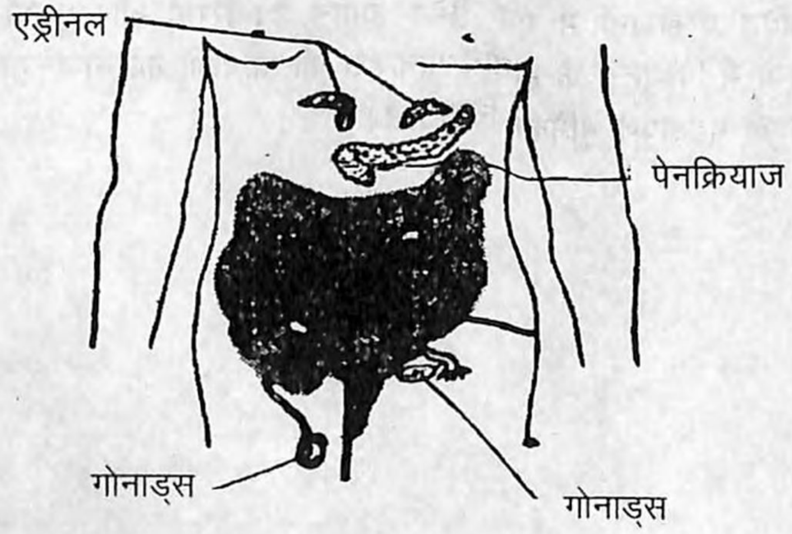

गहराई से जुड़ा हुआ है। भय, दर्द, अधिक शीत का प्रकोप, अल्प रक्तचाप, भावात्मक उद्वेग आदि स्थितियां 'एपीनेफ्रीन' (जिसे 'एड्रीनालीन' भी कहते हैं) और 'नोर-एपीनेफ्रीन' नामक हार्मोनों के स्रावों के निमित्त बनती हैं। उत्तेजना, क्रोध, भय आदि के बार-बार होने पर एड्रीनल ग्रन्थि के एड्रीनालीन संग्रहीत करने वाले भण्डार रिक्त हो जाते हैं।

एड्रीनल के अभाव में अनिर्णायकता, चिंतातुरता तथा थोड़ा-सा निमित्त पाते ही रोने की वृत्ति आदि लक्षण देखे जाते हैं।

७. गोनाड्स (काम-ग्रन्थियां)

स्त्रियों में मुख्य रूप से गोनाड्स का कार्य डिम्बाशय तथा पुरुषों में वृषण द्वारा किया जाता है। नई प्रजोत्पत्ति के बीज पैदा करने के अतिरिक्त गोनाड्स अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रूप में भी कार्य करते हैं। गोनाड्स उन हार्मोनों का स्राव करते हैं जिनके द्वारा स्त्री स्त्रित्व प्राप्त करती है और उनमें स्त्रियोचित्त व्यक्तित्व बना रहता है। दूसरी ओर पुरुषों में इन अन्तःस्रावी हार्मोनों के द्वारा पुरुषत्व जागृत होता है, जिससे उसका पुरुष-रूप व्यक्तित्व बना रहता है। इन ग्रन्थियों के हार्मोन न केवल काम-वृत्ति पर अपितु शरीर के अन्यान्य अवयवों तथा उनके क्रिया-कलापों पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं।

'एस्ट्रोजन' और 'प्रोजेस्टेरोन' नामक दो हार्मोन स्त्रियों में ही होते हैं जो स्त्री को पुरुष से भिन्न दिखाने वाले लक्षणों को पैदा करते हैं। पुरुष के लैंगिक हार्मोनों को 'एन्ड्रोजन' कहते हैं। 'टेस्ट्रोस्टेरोन', वृषण द्वारा उत्पादित एन्ड्रोजनों में एक मुख्य हार्मोन है। स्त्रियों और पुरुषों—दोनों जातियों में पिच्यूटरी के हार्मोन गोनाड्स की क्रियाओं को नियन्त्रित करने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ●

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

२

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा : आध्यात्मिक आधार

हमारा द्वैतात्मक अस्तित्व

आत्मवादी दर्शन हमें इस सत्य की अनुभूति कराता है कि हमारा अस्तित्व द्वैतात्मक है—दो तत्वों का संयोग है। एक है चेतन-तत्व, जीव, दूसरा है—अचेतन तत्व, शरीर। यह द्वैत तब तक बना रहता है जब तक चेतना का विशुद्धतम स्वरूप उपलब्ध नहीं हो जाता। द्वैतात्मक स्थिति में हमारे अभौतिक चैतन्यमय तत्व (आत्मा) को अपने सुख-दुःख के संवेदन के लिए तथा क्रियात्मक प्रवृत्ति के लिए एक स्थूल शरीर की आवश्यकता होती है। वास्तव में केवल एक स्थूल शरीर से ही काम नहीं चलता, अपितु सूक्ष्म शरीर की अपेक्षा भी रहती है। हमारे व्यक्तित्व की व्यूह-रचना बहुत जटिल है। रचना-क्रम इस प्रकार बनता है—सम्पूर्ण व्यक्तित्व के केन्द्र में है—चैतन्य तत्व—द्रव्य आत्मा या मूल आत्मा। उस केन्द्र से बाहर परिधि में अतिसूक्ष्म शरीर यानी कर्म शरीर है, जो कषाय के वलय को पैदा करता है। केन्द्र से चैतन्य तत्व के जो स्पन्दन निकलते हैं, वे कषाय-तन्त्र को पार कर बाहर आते हैं। वह है—अध्यवसाय का तन्त्र। यह स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर—तैजस शरीर के साथ सक्रिय होकर काम करता है।

इस प्रकार हमारे मौलिक मनोवेगों, पाशवी आवेगों एवं कामुकता पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए जो हमारे विवेक और प्रज्ञा को जगाता है और हमें उन पर प्रभुत्व प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करता है, वह हमारी सूक्ष्म चैतन्यशील आत्मा ही है।

अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र

ज्योंही हम अस्तित्व के द्वैत को स्वीकार करते हैं, हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि भौतिक (स्थूल) शरीर और अभौतिक (सूक्ष्म) आत्मा के बीच में परस्पर संचार-व्यवहार के लिए कोई संचार माध्यम की आवश्यकता होगी। अर्थात् शरीर के भीतर ही कोई ऐसी अन्तरनिर्मित व्यवस्था होनी चाहिए जिसके माध्यम से हमारा सूक्ष्म चेतन तत्व अपनी शक्ति और प्रभुत्व को क्रियान्वित कर स्थूल भौतिक (शारीरिक) अवयवों—अस्थि, मांस और जैविक रसायनों का नियन्त्रण/नियमन कर

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

सके। इस व्यवस्था में हमारी चेतना की अति सूक्ष्म और अमूर्त्त अभिव्यक्तियों के स्थूलीकरण की तथा अभौतिक आदेशों की भौतिक स्तर पर क्रियान्विति की क्षमता होनी चाहिए। यह आन्तरिक संचार माध्यम और कोई नहीं, अपितु हमारे शरीर का अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र है जो हमारे अस्तित्व के दोनों स्तरों—सूक्ष्म चेतना तथा स्थूल भौतिक शरीर के बीच कम्प्यूटर या परिवर्तक (ट्रांसफार्मर) का कार्य करता है। इसके लिए वे हार्मोन नामक रासायनिक पदार्थों का उत्पादन एवं प्रसारण करते हैं।

चैतन्य-केन्द्र और ग्रन्थियां

दार्शनिक, वैज्ञानिक और चिकित्सक—सभी एकमत से यह बात कहते हैं कि इन अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का व्यक्ति की भावधारा और मनोदशाओं के साथ गहरा सम्बन्ध है।

डॉ. एम. डब्ल्यू. काप, एम.डी., ने अपनी पुस्तक *ग्लैण्ड्स—अवर इनविजिबल गार्डियन्स* में लिखा है—"हमारे भीतर जो ग्रन्थियां हैं, वे क्रोध, कलह, ईर्ष्या, भय, द्वेष आदि के कारण विकृत बनती हैं। जब ये अनिष्ट भावनाएं जागती हैं, तब एड्रीनल ग्लैण्ड् को अतिरिक्त काम करना पड़ता है। वह थक जाती है। दूसरी ग्रन्थियां भी अतिश्रम से थक कर श्लथ हो जाती हैं।"

जब-जब हमारे संस्कार के कारण आवेग जागते हैं, तब-तब उन ग्रन्थियों पर अतिरिक्त भार पड़ता है। वे अस्वाभाविक रूप से काम करने लगती हैं। स्राव अधिक होता है। यह अतिरिक्त स्राव अनेक विकृतियां पैदा करता है। ग्रन्थियों की शक्ति क्षीण हो जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम इन आवेगों और भावनाओं को नियन्त्रित करें। आवेगों को समझदारी से समेटें और ग्रन्थियों पर अधिक भार न आने दें।

आयुर्वेद और एक्यूपंक्चर

भगवती सूत्र—में बतलाया गया है—'सव्वेणं सव्वे।' हमारी चेतना के असंख्य प्रदेश हैं। वे सब चैतन्य केन्द्र हैं। किन्तु कुछ स्थान ऐसे हैं, जहां चैतन्य दूसरे स्थानों की अपेक्षा अधिक सघन होता है। विज्ञान की भाषा में हमारा पूरा शरीर विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र (Electromagnetic Field) है। किन्तु कुछ विशेष स्थानों में विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता अन्य स्थानों

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

की तुलना में अनेक गुनी अधिक होती है। हमारा मस्तिष्क, इन्द्रियां, अन्तःस्रावी ग्रन्थियां ऐसे केन्द्र हैं। आयुर्वेद की भाषा में इन चैतन्य-केन्द्रों को मर्मस्थान कहा गया है। आयुर्वेदाचार्यों ने ऐसे १०७ मर्मस्थान बताए हैं। इन मर्मस्थानों में प्राण का केन्द्रीकरण होता है। ये रहस्य के स्थान हैं। यहां चेतना विशेष प्रकार से अभिव्यक्त होती है। प्रेक्षा-ध्यान के चैतन्य केन्द्र और आयुर्वेद के मर्मस्थानों के स्थान की दृष्टि से और महत्व की दृष्टि से अद्‌भुत समानता है।

एक्यूपंक्चर के चिकित्सकों ने हमारे शरीर में ऐसे ७०० से अधिक केन्द्र खोज निकाले हैं, जिन्हें सूई द्वारा उत्तेजित करने पर अनेक प्रकार के रोगों की चिकित्सा की जाती है, अनेक असाध्य रोगों का उपचार किया जाता है। एक्यूपंक्चर और एक्यूप्रेसर में माना गया है—जो केन्द्र हमारे मस्तिष्क में हैं, वे हमारे अंगूठे में भी हैं। ये केन्द्र एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार मर्मस्थान, एक्यूपंक्चर के पोइंट्स, अन्तःस्रावी ग्रन्थियां—ये सब चैतन्य-केन्द्र से सम्बद्ध और प्रभावित हैं।

चैतन्य-केन्द्र सब अवयवों में सक्रियता पैदा करने वाले हैं। ये इन्द्रियों को भी संचालित करते हैं और मन को भी संचालित करते हैं। उनकी क्रियाओं को संतुलित करना साधना का मुख्य अंग है। यह कार्य चैतन्य-केन्द्र की प्रेक्षा द्वारा किया जा सकता है।

ज्ञानकेन्द्र और कामकेन्द्र

हम इस दृश्य शरीर को दो मुख्य केन्द्रों में विभाजित कर सकते हैं—ज्ञानकेन्द्र और कामकेन्द्र। नाभि से ऊपर मस्तिष्क तक का स्थान ज्ञानकेन्द्र है—चेतना-केन्द्र है और नाभि से नीचे का स्थान कामकेन्द्र है। हमारी चेतना इन दो वृत्तियों के आसपास उलझी रहती है। जहां चेतना ज्यादा उलझी रहती है, वहां चेतना का प्रवाह भी अधिक हो जाता है। ऊर्जा का मुख्य केन्द्र कामकेन्द्र है। सारी चेतना इसी के आसपास बिखरी पड़ी है। ज्ञानकेन्द्र में ऊर्जा बहुत कम है, क्योंकि आज के मनुष्य की मौलिक वृत्ति है काम और इसलिए उसकी सारी चेतना, सारी ऊर्जा वहीं सिमटी पड़ी है। उसका ध्यान उधर ही ज्यादा जाता है। मानसशास्त्री कहते हैं—"मनुष्य में काम का जितना तनाव होता है, उतना और किसी वृत्ति का नहीं होता। भय का तनाव कभी-कभी होता है। क्रोध का तनाव

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

कभी-कभी होता है। ईर्ष्या और मान का तनाव कभी-कभी होता है। इसी प्रकार अन्य आवेगों का तनाव भी कभी-कभी होता है। किन्तु काम का तनाव सबसे ज्यादा होता है, सघन होता है। उसकी जड़ें बहुत गहरे में हैं।" इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृष्ण-लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या—इन तीनों अप्रशस्त या अधर्म लेश्याओं का केन्द्र भी यहीं होना चाहिए और यथार्थ में यही है। हमारी प्रत्येक वृत्ति और उसकी अभिव्यक्ति का केन्द्र इसी स्थूल शरीर में होगा। इन तीन अधर्म लेश्याओं की अभिव्यक्ति का केन्द्र कामकेन्द्र है। आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान के केन्द्र भी ये ही हैं। जब चेतना यहां रहती है तब इष्ट का वियोग होने पर व्याकुलता उत्पन्न होती है, अनिष्ट का संयोग होने पर क्षोभ पैदा होता है, प्रियता, अप्रियता की अनुभूतियां उत्पन्न होती हैं। वेदना के आने पर व्याकुलता, वेदना को नष्ट करने की चेष्टाएं, क्रूरता, ईर्ष्या, घृणा आदि के स्पन्दन कामकेन्द्र के आसपास अनुभूत होते हैं। वे यहीं उभरते हैं। हमारे कामकेन्द्र की चेतना के आसपास ही वे स्पन्दन क्रियान्वित होते हैं।

चेतना का आन्तरिक स्तर

मन चेतना का आन्तरिक स्तर नहीं है। चेतना का आन्तरिक स्तर है—आवेग, क्रोध, मान, ईर्ष्या, लालच आदि। हमारी वृत्तियां चेतना का आन्तरिक स्तर है। बीमारियां वहां से आती हैं। चरित्र भी वहीं से आता है। मस्तिष्क से चरित्र नहीं आता। चरित्र आता है—वृत्तियों से और वे आती हैं ग्रन्थि-तन्त्र से। ग्रन्थियों का स्थान मस्तिष्क नहीं है। आज तक यही माना जाता था कि मस्तिष्क हमारे शरीर का मुख्य अवयव हैं। इसी प्रकार हृदय और गुर्दे भी महत्वपूर्ण अवयव माने जाते हैं। किन्तु अब शरीर-शास्त्रीय नये आविष्कारों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अवयव है हमारा ग्रन्थि-तन्त्र—डक्ट्लेस ग्लैंड्स। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का स्राव बाहर नहीं होता। वह सीधा रक्त में मिल जाता है। आवेग, आवेश और भ्रष्ट आचरण—इन सबका निमित्त हैं—ग्रन्थि-तन्त्र। ग्रन्थि-तन्त्र को प्रभावित किये बिना आदमी को सच्चरित्र, प्रामाणिक नहीं बनाया जा सकता। भ्रष्टाचार समाप्त करने और जीवन में सच्चाई लाने के लिए ग्रन्थि-तन्त्र को प्रभावित करना होगा। आदमी उपदेशों से सच्चरित्र नहीं होता, जितना वह ग्रन्थि-तन्त्र के स्रावों को बदलने से होता है। यह तथ्य

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

आज अनुभव-सिद्ध हो चुका है।[1] यह नियम ६५ प्रतिशत लोगों पर लागू होता है। कुछेक व्यक्ति, जिनकी चेतना अत्यन्त प्रबुद्ध होती हैं, वे इसके अपवाद हो सकते हैं। सामान्य रूप से तो यही नियम है कि ग्रन्थि-तन्त्र को बदले बिना आदमी को नहीं बदला जा सकता।

वृत्ति, प्रवृत्ति और पुनरावृत्ति

कर्म की प्रेरणा है—वृत्ति। वृत्ति से प्रेरित होकर ही मनुष्य और पशु कर्म करते हैं। वृत्तियां अनेक हैं—आहार की वृत्ति, भय की वृत्ति, काम और परिग्रह की वृत्ति, क्रोध और मान की वृत्ति, माया और लोभ की वृत्ति। इन वृत्तियों से प्रेरित होकर ही प्राणी कर्म करता है। प्रत्येक कर्म के पीछे इनमें से किसी एक या अधिक वृत्तियों की प्रेरणा मिलेगी। वृत्ति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से पुनरावृत्ति—यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। वृत्ति जागी, प्रवृत्ति हुई।

हाथ से चांटा मारने के पीछे जो हमारी क्रोध की वृत्ति है, उसका शोधन करना है। हाथ का क्या शोधन होगा ? हाथ चलता ही रहेगा। चांटे मारने में हाथ नहीं चलेगा तो वह प्रणाम करने में चलेगा, भोजन करने में चलेगा। हाथ का शोधन नहीं करना है। कर्म, अकर्म तब बनता है जब वृत्ति का शोधन होता है। कर्म के साधनों का शोधन नहीं होता, कर्म की प्रेरणा का शोधन हो सकता है। पर कर्म की प्रेरणा का शोधन केवल मनुष्य ही कर सकता है, पशु नहीं कर सकता है, यही मनुष्य और पशु के बीच की भेद-रेखा है। आदमी और पशु की परिभाषा हम इन शब्दों में कर सकते हैं—जो वृत्ति का शोधन नहीं कर सकता है, वह होता है पशु। पशु की पशुता चलती रहेगी; इसलिए कि उसमें वृत्ति-परिष्कार की कोई सम्भावना

---

१. लगभग प्रत्येक धर्म की उपासना-पद्धति में उपासना करते समय एक विशिष्ट प्रकार का आसन और मुद्रा का प्रयोग किया जाता है जिसमें व्यक्ति घुटनों के बल बैठकर हाथें को जोड़कर, मस्तक झुकाकर मस्तक से भूमि पर स्पर्श करता है। मुसलमान नमाज पढ़ते समय, ईसाई चर्च में प्रार्थना करते समय, वैदिक, बौद्ध, जैन आदि देव-वन्दन करते समय लगभग इसी आसन-मुद्रा का प्रयोग करते हैं। जब कमर को झुकाकर मस्तक को भूमि तक झुकाया जाता है, तब एड्रीनल ग्रन्थि में से अहंकार को पैदा करने वाले हार्मोनों का परिष्कार होता है, उपासक में नम्रता के भाव पैदा होते हैं। अति प्राचीन समय से सार्वभौम रूप में सर्वत्र यह प्रथा प्रचलित है। आसन, मुद्रा एवं भवना के संयुक्त प्रभाव से ग्रन्थियों के हार्मोनों को परिष्कृत करने का यह एक अच्छा उदाहरण है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

नहीं है। मनुष्य पशुता से ऊपर उठ सकता है क्योंकि उसमें वृत्ति-परिष्कार की क्षमता है।

मनुष्य की विलक्षण क्षमता

अनेक अर्थों में मनुष्य भी निःसन्देह एक 'प्राणी' है। वह अन्य सभी प्राणियों की तरह ही आहार-संज्ञा, भय-संज्ञा, मैथुन-संज्ञा और परिग्रह-संज्ञा वाला है, इसीलिए उसे भूख लगती है, वह भयभीत होता है, वह कामासक्त होता है और आक्रमण करता है। इस प्रकार भोजन करना, भोजन की सामग्री जुटाने के लिए प्रयत्न करना, स्व-संरक्षण के लिए लड़ाई करना तथा प्रजोत्पत्ति—इन सभी प्रवृत्तियों को मनुष्य भी अन्य सभी प्राणियों की तरह ही करता है, क्योंकि मनुष्य भी अन्य प्राणियों की तरह ही अपनी दैहिक आवश्यकताओं की अन्तःप्रेरणा से बाधित है। द्वेष, अनुराग, इच्छाओं, वासनाओं जैसे वृत्तियां उसकी प्रवृत्तियों पर उसी तरह हावी होता है, जिस प्रकार अन्य प्राणियों पर होती हैं। इन सब दृष्टियों से तो मनुष्य भी केवल एक 'प्राणी' ही है। पर, इन सबके बावजूद मनुष्य में कुछ ऐसी विलक्षणताएं हैं, जिनसे वह अन्य प्राणियों से नितान्त भिन्न और बहुत अर्थों में 'अद्वितीय' प्राणी है। मनुष्य की सबसे महान् विलक्षणता यह है कि उसकी चेतना अन्य प्राणियों की चेतना से अधिक विकसित है—वह 'विवेक चेतना' से युक्त है। मनुष्य ने मस्तिष्कीय विकास और प्रतिभा के क्षेत्र में अद्वितीय उपलब्धि की है और समग्र विश्व में पैदा होने वाले प्राणियों में उसने श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त किया है। यह इसलिए हुआ है कि केवल मनुष्य ही अपनी अन्तर्निहित युक्तिसंगत विचार-चेतना के द्वारा, जिसका कि मुख्य फल 'विज्ञान' है, अपने विकास के लिए उच्चतर मानदण्डों एवं मूल्यों का संस्थापन कर सकता है। मनुष्येतर प्राणियों में यौक्तिक मानस का अभाव होता है। उनमें केवल जिजीविषा और अपने तात्कालिक परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको ढालने की क्षमता ही अन्तर्निहित होती है। वे (पशु-पक्षी वनस्पति आदि) जीव अपनी असंख्य पीढ़ियों से उसी प्रकार का जीवन बिता रहे हैं—उन्होंने कोई विकास नहीं किया है।

मनुष्य की विलक्षणताएं शरीर-विज्ञान से सम्बन्धित भी हैं और मनोविज्ञान से भी। उसकी शारीरिक विलक्षणताएं शायद यहां अप्रासंगिक होंगी। प्रस्तुत चर्चा के संदर्भ में मनुष्य की जिस विलक्षणता का हम उल्लेख करना चाहते हैं, वह है—उसकी 'प्रत्ययात्मक विमर्श' की क्षमता एवं विवेक चेतना। मनुष्य के मन के दो स्तर हैं—चेतन मन और अवचेतन मन। यह अवचेतन मन ही मनुष्य की वह चेतना है जो उसके भीतर सर्वाधिक

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

प्रेरक बल रखती है। यही अन्तःस्रावी ग्रंथियों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। इन ग्रंथियों का कार्य है—हमारे भावावेशों को पैदा करना। चेतन मन में स्वयं कोई भावावेश उत्पन्न नहीं होता।

कर्मशास्त्रीय व्याख्या

आज के शरीर-शास्त्रियों ने शरीर में अवस्थित ग्रंथियों के विषय में बहुत सूक्ष्म विश्लेषण किया है। बौना होना, लम्बा होना, सुन्दर या असुन्दर होना, स्वस्थ या बीमार होना, बुद्धिमान या बुद्धिशून्य होना—सब इन ग्रंथियों के स्राव पर निर्भर हैं। ग्रन्थियों के स्राव इन सबको नियन्त्रित करते हैं। इस तथ्य को हम कर्म शास्त्रीय भाषा में समझें।

आठ कर्मों में एक कर्म है—नाम कर्म। उसके अनेक विभाग हैं। संस्थान नाम कर्म के कारण मनुष्य लम्बा या बौना होता है। इस प्रकार सुन्दर-असुन्दर, सुस्वर वाला या दुःस्वर वाला आदि सब नाम कर्म की विभिन्न प्रकृतियों के कारण होता है। नाम कर्म का सूक्ष्म अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि हमारे शरीर का सारा निर्माण नाम कर्म के आधार पर होता है।

उपरोक्त कर्मशास्त्रीय विश्लेषण और शरीर शास्त्रीय विश्लेषण को मिलाकर देखें। दोनों में भाषा का अन्तर है, तथ्य का नहीं। शरीरशास्त्री 'हार्मोन्स' 'सिक्रीशन्स ऑफ ग्लैड्स', 'ग्रन्थियों का स्राव' कहते हैं। कर्मशास्त्री 'कर्मों को रसविपाक' 'अनुभाग बन्ध' कहते हैं।

योगशास्त्र और शरीरशास्त्र

हमारे शरीर में ग्रन्थियां हैं, चक्र हैं, कमल हैं। कमल जैसी चीज नहीं मिली तो डॉक्टरों ने कहा—हमने सारे शरीर को चीरफाड़ कर देख डाला, उसके अणु-अणु का विश्लेषण कर दिया, पर कहीं भी कमल नहीं मिला, कहीं चक्र दिखाई नहीं दिए। हां, डॉक्टरों को कुछ भी नहीं मिला। नाभि कमल हो या न हो, आज्ञा चक्र हो या न हो, विशुद्धि केन्द्र हो या न हो, किन्तु जो पाइनियल, पिच्यूटरी, थाइराइड आदि ग्रन्थियां हैं, ग्लैंड्स हैं, उनको यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो योगशास्त्र और शरीरशास्त्र के प्रतिपादन में कोई विशेष भेद प्रतीत नहीं होगा।

आगे के प्रकरणों में हम प्रत्येक चैतन्य केन्द्र के कार्य तथा उसकी प्रेक्षा से होने वाले महत्वपूर्ण परिणाम, चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा की विधि आदि विषयों की चर्चा करेंगे। ●

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

३
चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा क्यों ?

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में विवेक-चेतना अन्तर्निहित होती है, फिर भी जब तक इसका जागरण नहीं होता, तब तक मनुष्य अपने चेतन मन के द्वारा केवल बुद्धि और तर्क के आधार पर ही अपनी वृत्तियों की मांग पर विमर्श करता है। उसमें विवेक चेतना को प्रयोग में नहीं लाता। वस्तुतः उसकी बौद्धिक और तार्किक शक्ति पर वृत्तियां इतनी अधिक हावी हो जाती हैं कि वे उनकी मांग के औचित्य-अनौचित्य का सही निर्णय करने में सक्षम नहीं होतीं। प्रत्युत ऐसी स्थिति में उनका चेतन मन वृत्तियों की मांग को उचित नहीं ठहराने हेतु कोई-न-कोई तर्क या युक्ति ढूंढ निकालता है। इसलिए अपनी मौलिक मनोवृत्तियों के प्रेरक बलों पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपनी सुषुप्त विवेक-चेतना को जागृत करे एवं विकसित करे।

विवेक-चेतना का जागरण

विवेक चेतना और विवेक पूर्ण निर्णायक शक्ति का सम्यग् विकास ही एकमात्र मार्ग है जिसके द्वारा पाशवी वृत्तियों, जंगली (असभ्य, असंस्कृत) परम्पराओं, अन्धविश्वासों और अनेक रूढ़िगत व परम्परागत मान्यताओं के प्राबल्य को नियन्त्रित एवं समाप्त किया जा सकता है। इसके परिणामस्वरूप खतरनाक आवेगों की शक्ति का सृजनात्मक उपयोग किया जा सकेगा तथा उनके खतरों को समाप्त किया जा सकेगा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के उस विलक्षण वैशिष्ट्य को उजागर किया जाए जिसे 'विवेक-चेतना' और 'विवेक-पूर्ण तर्क' कहा जाता है और अन्त में शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक सभी प्रवृत्तियों पर विवेक-चेतना का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित किया जाए।

अन्तःस्रावी ग्रन्थी तंत्र का संतुलन

वृत्तियों के आवेगात्मक बलों के उद्दीपन या शमन करने की मूलभूत चाबी है—अन्तःस्रावी ग्रंथियां। इसलिए ये ही चैतन्य-केन्द्रों के संवादी केन्द्र

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

हैं। अन्तःस्रावी गंन्थियां स्वतंत्र रूप से अलग-अलग कार्य नहीं करतीं, अपितु वाद्य-वृन्द के सदस्यों की तरह इनकी एक पूरी मण्डली होती है। सारी ग्रन्थियां परस्पर रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा सम्बद्ध हैं। इतना ही नहीं, वे मस्तिष्क और नाड़ी-तन्त्र के साथ भी पूर्णरूप से जुड़ी हुई हैं। नाड़ी-तन्त्र की प्रवृत्तियां इनसे प्रभावित होती हैं और उन्हें प्रभावित करती हैं। अन्तःस्रावी तन्त्र का असन्तुलन मस्तिष्क को प्रभावित करता है और चिन्तन-धारा को दूषित या विकृत बनाता है। उदाहरणतः गोनाड्स की अधिक सक्रियता मन को विषय-वासना या भय के चिन्तन में लगाए रखेगी। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का अभ्यास अन्तःस्रावी तन्त्र के सन्तुलन को पुनः स्थापित करने की क्षमता प्रदान करता है।

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का अभ्यास व्यक्ति के विवेक चेतना के विकास द्वारा चेतन मन की सम्यग्-शक्ति को प्रबल बना सकती है और मौलिक मनोवृत्तियों के आवेगों को क्षीण कर सकती है।

वैज्ञानिक उपचार का अधूरापन

ध्यान-रूपान्तरण की प्रक्रिया है। उससे आदतें बदलती हैं, स्वभाव बदलता है और पूरा व्यक्तित्व बदल जाता है। इस रूपान्तरण की वैज्ञानिक व्याख्या की जा सकती है। आज का विज्ञान भी इस बात को समर्थित करने लगा है कि आदमी का रूपान्तरण हो सकता है। विज्ञान के अनुसार हमारे मस्तिष्क में आर.एन.ए. नामक रसायन होता है, जो हमारी चेतना की परतों पर छाया रहता है। विज्ञान ने यह खोज निकाला है कि यह रसायन व्यक्तित्व के रूपान्तरण का घटक है। इसे घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इसके आधार पर ही रूपांतरण घटित होता है, आदतें बदलती हैं। पुरानी आदतों को छोड़कर नई आदतें डाली जा सकती हैं।

हमारे शरीर में तीन प्रकार के केन्द्र हैं—एक केन्द्र वह है जहां तरंगें पैदा होती हैं। दूसरा केन्द्र वह है जहां से तरंगें गुजरती हैं। तीसरा केन्द्र वह है जहां तरंगें अभिव्यक्त होती हैं। हमारे शरीर में सारी व्यवस्था है। एक केन्द्र है जहां से क्रोध की तरंग उठती है। वह स्नायुओं से गुजरती है और एक केन्द्र पर आकर प्रकट हो जाती है।

आज का विज्ञान इन सारी बातों को जानता है। प्रत्येक वृत्ति के केन्द्र को उसने खोज लिया है। इस वृत्ति की तरंगें किस पथ से गुजरती हैं यह भी उसे ज्ञात है। अमुक वृत्ति के केन्द्र पर प्रहार कर, उसे निष्क्रिय

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

कर देने पर वह वृत्ति समाप्त हो जाती है। कर्म-शास्त्रीय भाषा में कहा जा सकता है कि उस कर्म के विपाक को बन्द कर डाला। विपाक का मार्ग अवरुद्ध हो जाने के कारण वह वृत्ति कभी नहीं उभर सकती। एक नाड़ी को काट देने से क्रोध समाप्त हो जाता है। एक नाड़ी को काट देने से उत्तेजना समाप्त हो जाती है। उन वृत्तियों की अभिव्यक्ति का केन्द्र निष्क्रिय हो जाता है। जिसमें से तरंगें गुजरती थीं, वह रास्ता बन्द हो गया। यहां एक बात पर विशेष ध्यान देना है कि इस प्रक्रिया में तरंगों की अभिव्यक्ति समाप्त हुई हैं, किन्तु तरंगों की उत्पत्ति समाप्त नहीं हुई हैं। उनके गुजरने का रास्ता बन्द हुआ है किन्तु उनकी उत्पत्ति का स्रोत नष्ट नहीं हुआ है। वह वैसा ही है। उसी प्रकार सजीव है, सक्रिय है। आदमी नहीं बदला, मुखौटा बदल गया। बाहर का बदल गया। भीतर में कुछ भी नहीं बदला।

तरंगातीत अवस्था

वैज्ञानिक उपचार केवल सामयिक उपचार है, किन्तु समस्या का स्थायी समाधान या अन्तिम समाधान नहीं है। उसका अन्तिम समाधान है कि व्यक्ति तरंगातीत अवस्था में चला जाय। क्रोध या किसी भी वृत्ति की तरंगें पुष्ट होती हैं पुनरावृत्ति के द्वारा। क्रोध को क्रोध का सिंचन मिलता है तो वह पुष्ट होता है। क्रोध को क्रोध का सिंचन न मिले तो क्रोध का पौधा, अपने आप मुरझा जाता है। अध्यात्म का सिद्धान्त है–सामायिक का सिद्धान्त। अध्यात्म का सिद्धान्त है अपने आपको देखने का सिद्धान्त। यही तरंगातीत चेतना की भूमिका है। जब व्यक्ति तरंगातीत अवस्था में पहुंच जाता है तब न राग का तरंग रहता है और न द्वेष का तरंग रहता है। तब न प्रियता होती है और न अप्रियता होती है। उस स्थिति में क्रोध की तरंग जहां से उठती है, उस पर प्रहार नहीं होता, किन्तु जो उस तरंग को उठाने का उत्तरदायी है, उस पर प्रहार होता है। वैज्ञानिक उपकरणों का, उनके द्वारा उत्पादित औषधियों का प्रभाव मस्तिष्कीय स्तरों पर स्नायु संस्थान या नाड़ी-मंडल पर होता है, किन्तु इस तरंगातीत ध्यान का, इस चैतन्य की अनुभूति का और समता का प्रभाव इस शरीर पर ही नहीं होता किन्तु वृत्तियों की तरंगों को पैदा करने वाले पर भी होता है। यह मूल पर प्रहार करने की प्रक्रिया है इसलिए यह स्थायी समाधान है। विज्ञान से आगे की प्रक्रिया है। तरंगातीत अवस्था तक पहुंचने की यही एकमात्र प्रक्रिया है। तरंगातीत अवस्था तक पहुंचने का एकमात्र उपाय है–चैतन्य

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

केन्द्रों का ध्यान। चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा महत्वपूर्ण ही नहीं, अध्यात्म-विकास का एक-मात्र साधन है।

अवचेतन मन से सम्पर्क

हमारे शरीर में जितनी भी ग्रन्थियां (ग्लैण्ड्स) हैं, वे सब अर्ध-चेतन मन (सबकोन्सियस माइण्ड) हैं। यह मस्तिष्क को भी प्रभावित करता है, इसलिए मस्तिष्क से भी अधिक मूल्यवान् है। इसे हमें जागृत करना है, यदि इसे सही साधनों के द्वारा जागृत करते हैं, तो भय से मुक्ति मिलती है। भय से मुक्त होने का अर्थ है—सारी बाधाओं से मुक्त होना। विज्ञान अभी यह बताने में समर्थ नहीं है कि ग्रन्थियों की जागृति के सही साधन क्या हैं? अध्यात्म के पास उत्तर है—और यह उत्तर प्रयोगात्मक है। हम चैतन्य-केन्द्रों (ग्रन्थियों) पर ध्यान करें। वे संतुलित होंगे। उनके सन्तुलन से भय समाप्त होगा, आवेग समाप्त होंगे, सारी बाधाएं समाप्त होंगी, एक नया आयाम खुलेगा, नया आनन्द, नई स्फूर्ति, नया उल्लास प्राप्त होगा।

दर्शन-केन्द्र हमारे अन्तर्ज्ञान का केन्द्र है। वह अन्तर्दृष्टि और सम्यग्दृष्टि का भी केन्द्र है। जितना आन्तरिक ज्ञान प्रकट होता है, वह इसी केन्द्र से प्रगट होता है। जब ध्यान दर्शन-केन्द्र पर स्थापित होता है, तब अपनी बात को भीतर तक पहुंचाने में बड़ी सुविधा हो जाती है। मनोविज्ञान मानता है कि जो बात हमारे स्थूल मन तक पहुंचती है वह कार्यकर नहीं होती। उससे व्यक्ति का परिवर्तन नहीं हो सकता। तरंगातीत अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। जब हम दर्शन-केन्द्र पर ध्यान करते हैं, तब हमारा विचार, हमारा संकल्प अन्तर्मन तक पहुंच जाता है। वह संकल्प, लेश्या-तन्त्र और अध्यवसाय तन्त्र तक पहुंच जाता है। तरंगातीत अवस्था प्राप्त होती है, परिवर्तन घटित होने लगता है।

चित्त की यात्रा चैतन्य-केन्द्रों पर

चित्त का यह स्वभाव है कि वह सिर से लेकर पैर तक चक्कर लगाता है। कभी ऊपर, कभी नीचे, सदा चलता रहता है। कभी हमें अचानक हिंसा की स्मृति आ जाती है, कभी द्वेष की स्मृति आ जाती है, कभी घृणा का विचार जाग जाता है, कभी अच्छा विचार जाग जाता है, कभी ऐसी उत्कृष्ट भावना, परमार्थ की जागती है कि सब कुछ त्यागने की भावना आ जाती है। ऐसा क्यों होता है? वृत्तियां क्यों बदलती हैं? कभी किसी स्मृति का दरवाजा खुलता है और कभी स्मृति की खिड़की खुलती

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

है। क्यों खुलती रहती है ? कौन भीतर बैठा है जो इन्हें खोलता रहता है ? और कोई नहीं, यह चित्त की यात्रा जब-जब होती है, चित्त जिस ग्रन्थि से, जिस केन्द्र से, जिस साइकिक सेन्टर का स्पर्श करता है। इस रहस्य को जान लेने के बाद साधक का रास्ता बहुत सीधा हो जाता है। जो साधक बदलना चाहता है उसके लिए बहुत आवश्यक है कि वह उन चैतन्य-केन्द्रों पर चित्त की यात्रा अधिक से अधिक करे जो चैतन्य-केन्द्र हमारे व्यवहार को पवित्र बनाते हैं, आचरण को पवित्र बनाते हैं और असत् आचरण पर, असत् व्यवहार पर नियन्त्रण करते हैं।

यह सही है कि परिस्थितियां हमारे भाव को प्रभावित करती हैं। किन्तु वे मुख्य नहीं हैं, गौण हैं। मुख्य हैं—अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव। इन्हें उपादान कारण कहा जा सकता है और परिस्थितियों को निमित्त कारण माना जा सकता है। हमें उपादान का परिष्कार करना है और निमित्त का भी परिष्कार करना है। किन्तु हमें पहला स्थान देना होगा आन्तरिक उपादानों को और दूसरा स्थान देना होगा परिस्थिति जनित निमित्तों को।

सूक्ष्म शरीर में जिस प्रकार के रस-विपाक हो रहे हैं, उनके आधार पर शरीर का सारा चक्र चलता है। जो विपाक होता है, उसका स्राव ग्रन्थियों के द्वारा होता है और वह हमारी सारी प्रवृत्तियों को संचालित करता है, प्रभावित करता है। यदि साधक इसे उचित रूप में जान लेता है, तो वे स्थूल शरीर तक न रुक कर और आगे बढ़ेंगे। ध्यान की गहराई में जाकर सूक्ष्म शरीर से साक्षात्कार करेंगे और सूक्ष्मताओं का अनुभव करेंगे। साधना का यही प्रयोजन है—साधक आगे बढ़ते-बढ़ते सूक्ष्म शरीर तक पहुंच जाए। उन रसायनों तक पहुंचे जो कर्मों के द्वारा निःसृत (स्रावित) हो रहे हैं। साधक वहां भी न रुकें, और आगे बढ़कर आत्म-परिणामों तक पहुंचे जो उन स्रावों को निःसृत कर रहे हैं।

आत्मा के परिणाम निरन्तर चलते रहते हैं। वे यदि विशुद्ध चैतन्य-केन्द्रों की ओर प्रवाहित होते हैं, तो विशुद्ध होते हैं और यदि वे ही वासना की वृत्तियों को उत्पन्न करने वाले चैतन्य-केन्द्र क्रोध आदि कषायों की वृत्तियों को उत्तेजित करते हैं, जो आहार, मैथुन, भय और परिग्रह संज्ञाओं (मौलिक मनोवृत्तियों)—Primal Drives को उत्तेजना देते हैं; उन केन्द्रों की ओर आत्म परिणाम की धारा प्रवाहित होगी, तो वे वृत्तियां उभर आएंगी।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

शरीर के किस भाग में चित्त को प्रवाहित करने से अच्छे परिणाम आ सकते हैं और किस भाग में प्रवाहित करने से बुरे परिणाम आ सकते हैं—यदि यह सारा स्पष्ट हो जाय तो हम अपनी सारी वृत्तियों पर नियन्त्रण पा सकते हैं और हम अपनी इच्छानुसार शुभ लेश्याओं में प्रवेश कर सकते हैं, अशुभ लेश्याओं से दूर रह सकते हैं। एक प्राचीन ग्रन्थ के अनुसार जब आत्म-परिणाम नाभि कमल की एक पंखुड़ी पर जाता है, तब क्रोध की वृत्ति जागती है, जब दूसरी पंखुड़ी पर जाता है, मान की वृत्ति जागती है, तीसरी पर जाता है तब माया की वृत्ति जागती है, चौथी पर वासना की वृत्ति जागती है। इसके विपरीत जब आत्मपरिणाम हृदय कमल की पंखुड़ियों पर जाता है तब समता की वृत्ति जागती है, ज्ञान का विकास होता है। जब वे ज्ञान-केन्द्र पर पहुंचते हैं, तब केवल ज्ञान की क्षमता जागृत हो सकती है।

इससे एक सच्चाई का उद्घाटन होता है कि शरीर में अनेक संवादी केन्द्र हैं, इन केन्द्रों पर चित्त को एकाग्र कर, उनकी प्रेक्षा कर, ऐसे द्वारों और खिड़कियों का उद्घाटन कर सकते हैं जिनके द्वारा चेतना की रश्मियां बाहर निकल सकें।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

४

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा : विधि

क्यूसोस, ग्लैण्ड और चक्र

हमारे शरीर में अनेक ग्रन्थियां हैं। योग के प्राचीन आचार्यों ने उन्हें चक्र कहा है। आज के शरीर-शास्त्री उन्हें ग्लैण्ड्स कहते हैं। जापान में प्रचलित बौद्ध पद्धति "जूडो" में उन्हें क्यूसोस (Kyushos) कहते हैं। यह एक आश्चर्यकारी बात है कि योग के आचार्यों ने चक्रों के जो स्थान और आकार माने हैं, आज के शरीरशास्त्रियों ने ग्लैण्ड्स के जो स्थान और आकार माने हैं और जूडो पद्धति में क्यूसोस के जो स्थान और आकार माने हैं वे तीनों समान हैं, उनमें विशेष अन्तर नहीं है। तीनों की धारणा समान है।

क्र.सं.	*जेडो क्यूसोस*	*ग्लैण्ड्स*	*योग चक्र*
१.	टेन्डो (Tendo)	पिनियल ग्लैण्ड	सहस्रार चक्र
२.	ऊतो (Uto)	पिच्यूटरी ग्लैण्ड	आज्ञा चक्र
३.	हिचू (Hichu)	थाइराइड ग्लैण्ड	विशुद्धि चक्र
४.	क्योटोट्सु (Kyototsu)	थाइमस ग्लैण्ड	अनाहत चक्र
५.	सुइगेट्स (Suigetsu)	एड्रेनल ग्लैण्ड	मणिपुर चक्र
६.	माइओजो (Myojo)	गोनाड्स	स्वाधिष्ठान चक्र
७.	सुरगिने (Tsurigane)	गोनाड्स	मूलाधार चक्र

प्रेक्षाध्यान-साधना की पद्धति के चैतन्य केन्द्र उक्त क्यूसोस, ग्लैण्ड्स और चक्रों से तुलनीय है।

चैतन्य-केन्द्र—चैतन्य केन्द्र की श्रृंखला में निम्नलिखित केन्द्र हैं, जिनका स्थान और किस अन्तःस्रावी ग्रन्थि के साथ वे सम्बन्धित हैं, बताया गया है :-

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

	नाम	किस ग्रन्थि से संबंध	स्थान
१.	शक्ति केन्द्र	गोनाड्स (कामग्रंथि)	पृष्ठ-रज्जु के नीचे के छोर पर
२.	स्वास्थ्य केन्द्र	गोनाड्स (कामग्रंथि)	पेडू (नाभि से चार अंगुल नीचे)
३.	तैजस केन्द्र	एड्रीनल, पेन्क्रियाज (आइलैण्ड्स ऑफ लैंगरहैन्स)	नाभि
४.	आनन्द केन्द्र	थायमस	हृदय के पास बिल्कुल बीच में
५.	विशुद्धि केन्द्र	थाइराइड, पेराथाइराइड	कण्ठ के मध्य भाग में
६.	ब्रह्म केन्द्र	रसनेन्द्रिय	जिह्वाग्र
७.	प्राण केन्द्र	घ्राणेन्द्रिय	नासाग्र
८.	चाक्षुष केन्द्र	चक्षुरिन्द्रिय	आंखों के भीतर
६.	अप्रमाद केन्द्र	श्रोत्रेन्द्रिय	कानों के भीतर
१०.	दर्शन केन्द्र	पिच्यूटरी (पीयूष)	भृकुटियों के मध्य में
११.	ज्योति केन्द्र	पाइनियल	ललाट के मध्य में
१२.	शांति केन्द्र	हाइपोथेलेमस	मस्तिष्क का अग्र भाग
१३.	ज्ञान केन्द्र	बृहन्मस्तिष्क (कोर्टेक्स)	सिर के ऊपर का भाग (चोटी का स्थान)

चैतन्य-केन्द्र स्थान और नाम

जागृत करने की प्रक्रिया

चैतन्य केन्द्रों को जागृत करने की सरल पद्धति यह है–आप जिस केन्द्र को जागृत करना चाहें, जिसे सक्रिय बनाना चाहें उस पर मन को एकाग्र करें। मन जितना अधिक एकाग्र होगा, वह केन्द्र सक्रिय हो जाएगा, जागृत हो जाएगा। हमें किस को जागृत करना है, सक्रिय बनाना है, यह हमारे लक्ष्य पर निर्भर है। जो व्यक्ति को प्राप्त करना चाहता है, पवित्र

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

होना चाहता है वह विशुद्धि केन्द्र पर चित्त को बार-बार एकाग्र करे। इससे वासना के संस्कार क्षीण होंगे, पवित्रता आती जायेगी। जो व्यक्ति प्रातिभ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, होने वाली घटनाओं को पहले से ही जान लेना चाहते हैं, वे अपने चित्त को दर्शन केन्द्र पर केन्द्रित करें, घटनाओं का आभास होने लग जाएगा।

जो व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हैं, वे यदि अपने चित्त को मस्तिष्क के मध्य भाग पर एकाग्र करेंगे, तो उसका ज्ञान केन्द्र सक्रिय हो जाएगा।

जो व्यक्ति प्राण-शक्ति (या तैजस) को प्रबल करना चाहते हैं, उन्हें शक्ति केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करना होगा।

हमारे भिन्न-भिन्न प्रयोजन हैं। यह सचाई है कि जिस पर हम अधिक ध्यान देंगे, वे केन्द्र अधिक जागृत हो जाएंगे।

चैतन्य-केन्द्र स्थान और नाम

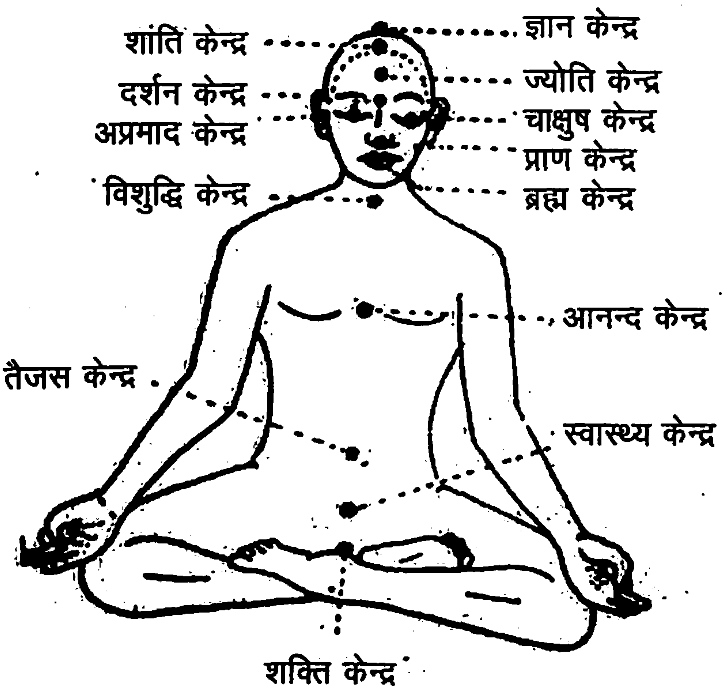

यदि आप चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान केन्द्रित कर उन्हें सक्रिय बनाते हैं, तो प्राणधारा को सीधा प्रवाहित होने का अवसर मिल जाता है, रुकावट दूर हो जाती है। यदि आप उनकी उपेक्षा करते हैं, उन पर ध्यान केन्द्रित नहीं करते हैं तो ये केन्द्र (या ग्रंथियां) सिकुड़ जाते हैं, अवरुद्ध हो जाते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

चैतन्य-केन्द्र का विशुद्धिकरण

हमारे शरीर में जो अनेकानेक चैतन्य-केन्द्र हैं, वे चेतना को जगाने वाले चुम्बकीय क्षेत्र या विद्युत् क्षेत्र हैं। ये सब निर्मल बनने चाहिए। ये निर्मल बनते हैं तो उनमें से अतीन्द्रिय चेतना बाहर निकलती है। ये निर्मल नहीं बनते हैं—वैसे ही मलिन रह जाते हैं, तो फिर उनमें से ज्ञान की रश्मियां बाहर नहीं आ सकतीं और व्यक्ति का ज्ञान प्रज्ञा की कोटि में नहीं जा सकता। प्रज्ञा तब जागती है, जब शरीर के चैतन्य केन्द्र निर्मल बन जाते हैं। चैतन्य केन्द्रों को निर्मल बनाने के लिए उनकी प्रेक्षा की जाती है, केवल देखता है, द्रष्टा भाव से देखता है, तब चैतन्य केन्द्र निर्मल बनने प्रारम्भ हो जाते हैं।

विवेक के केन्द्र और वासना केन्द्र

सारे केन्द्र स्थूल रूप में दो भागों में विभक्त हैं—ज्ञान या विवेक के केन्द्र और वृत्ति या वासना के केन्द्र। ज्ञान के केन्द्र ऊपर हैं, वासना के केन्द्र नीचे हैं। जब हमारी प्राणधारा या चित्त की गति नीचे की ओर होती है, तो वासना केन्द्र सक्रिय होता है, तीव्र होता है, जागृत होता है और ज्ञान-केन्द्र कमजोर हो जाता है। जब हमारी प्राणधारा या चित्त की गति ऊपर की ओर होती है, तब ज्ञान केन्द्र तीव्र होता है, सक्रिय होता है, जागृत होता है और वासना-केन्द्र क्षीण हो जाता है।

विधि

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का प्रारम्भ शक्ति केन्द्र की प्रेक्षा से किया जाता है फिर क्रमशः स्वास्थ्य केन्द्र, चाक्षुष केन्द्र, अप्रमाद केन्द्र, दर्शन केन्द्र, ज्योति केन्द्र, शांति केन्द्र और अन्त में ज्ञान केन्द्र की प्रेक्षा की जाती है। प्रत्येक केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर वहां होने वाले प्राण के प्रकंपनों का अनुभव किया जाता है। प्रारम्भ में प्रत्येक केन्द्रों पर २ से ३ मिनट तक ध्यान किया जाता है। साधक को इस बात की सावधानी रखनी होती है। कि तैजस केन्द्र और उससे नीचे के केन्द्रों पर ध्यान करने के पश्चात् आनन्द केन्द्र और उससे ऊपर के केन्द्रों पर ध्यान करना अनिवार्य है। यदि सभी पर ध्यान करने का समय न हो तो आनन्द या विशुद्धि केन्द्र से ही ध्यान शुरू किया जाता है, नीचे के केन्द्रों को छोड़ दिया जाता है। ●

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

५

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा : निष्पत्ति

ज्ञान केन्द्र

मानसिक ज्ञान का चैतन्य-केन्द्र मस्तिष्क है। यह ज्ञान-केन्द्र है। यह चैतन्य का सबसे बड़ा केन्द्र है। मन की सारी वृत्तियां उसके विभिन्न कोष्ठों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। सूक्ष्म शरीर से उतरने वाली शक्ति या उतरने वाला चैतन्य मस्तिष्क के माध्यम से स्थूल शरीर या जागृत मन में उतरता है। बुद्धि, स्मृति, चिन्तन-शक्ति आदि के केन्द्र भी इसी केन्द्र में हैं। इन्द्रियों के सारे संवेदन भी अंततोगत्वा यहीं अनुभूत होते हैं। केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान का भी यह प्रमुख स्थान है। लघु-मस्तिष्क, बृहन्मस्तिष्क एवं पश्च मस्तिष्क के विभिन्न हिस्से ज्ञान-केन्द्र से सम्बद्ध हैं। ज्ञान-केन्द्र की एवं इन हिस्सों की प्रेक्षा से उनकी जागृति होती है।

जब प्रेक्षा के द्वारा इस केन्द्र का जागरण होता है, तब वे विकसित होते हैं। उनके विकास के द्वारा बुद्धि, स्मृति, चैतन्य-शक्ति आदि को प्रबल बनाया जा सकता है। ज्ञानकेन्द्र की समग्रता से प्रेक्षा होने पर अतिरिक्त ज्ञान का अवतरण भी हो सकता है। अतीन्द्रिय चेतना के अनेक स्रोतों में से एक महत्वपूर्ण स्रोत है। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा से जो चैतन्य केन्द्र जागृत होता है, उसी से अतीन्द्रियज्ञान की प्रकाश-रश्मियां बाहर फैलती हैं। ज्ञान-केन्द्र एवं लघुमस्तिष्क की प्रेक्षा से साधक अपनी अतीन्द्रिय चेतना को जागृत कर सकता है। पूर्वजन्म की स्मृति, प्राग्-अवबोध (Precognition) आदि परामनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की निष्पत्ति भी इनकी प्रेक्षा से सम्भव है।

अध्यात्म-ज्योतिष की दृष्टि से इस केन्द्र पर शनि का प्रभाव है।

शान्ति केन्द्र

शान्ति केन्द्र अग्र-मस्तिष्क (Frontal lobe) में स्थित चित्त-शक्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसका सम्बन्ध भावधारा से है। सूक्ष्म शरीर से

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

प्रवहमान भावधारा मस्तिष्क के इसी भाग में आकर मन के साथ जुड़ती है। यहीं हमारे भाव मनोभाव बनते हैं। इस प्रकार यह स्थूल सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का संगम बिन्दु है।

आयुर्वेद के आचार्यों ने इसे 'अधिपति मर्म' कहा है। आधुनिक आयुर्विज्ञान (Medical Science) में इसे अवचेतन मस्तिष्क hypothalamus (हायपोथेलेमस) कहा गया है। नाड़ी संस्थान और अन्तःस्रावी ग्रंथि संस्थान का संगम-बिन्दु भी यही है। इस प्रकार संयुक्त नाड़ी-ग्रंथि-संस्थान (Neuro Endocrine System) का मुख्य केन्द्र भी यही है।

हठयोग के अनुसार यह ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार चक्र का स्थान है। प्राचीन साहित्य में 'हृदय' का भाव-संस्थान के रूप में जो उल्लेख किया गया है, वह शांति केन्द्र या अवचेतन मस्तिष्क ही है। यही भावधारा के उद्‌गम का मूल स्रोत है।

शांति केन्द्र की प्रेक्षा, भावधारा में परिवर्तन तथा अन्य चैतन्य केन्द्रों के जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। 'हृदय-परिवर्तन के लिए शांति-केन्द्र का जागरण अनिवार्य है।'

ज्योति केन्द्र और दर्शन केन्द्र

ललाट के मध्य में भीतर गहराई में स्थित ज्योति केन्द्र और दोनों भृकुटियों के बीच में स्थित दर्शन केन्द्र साधना की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण केन्द्र है। ग्रन्थि-शास्त्र की दृष्टि से ज्योति केन्द्र का सम्बन्ध पिनियल ग्लैण्ड के साथ तथा दर्शन केन्द्र का सम्बन्ध पिच्यूटरी ग्लैण्ड के साथ है।

हमारे कषायों—क्रोध, मान माया, लोभ एवं नौ-कषायों—काम-वासना, असंयम-आसक्ति आदि संज्ञाओं के उत्तेजन और उपशमन का कार्य अवचेतन मस्तिष्क (हायपोथेलेमस) से जो होता है, उसके साथ इन दोनों केन्द्रों का गहरा सम्बन्ध है। हायपोथेलेमस का सीधा सम्बन्ध पिनियल, पिच्यूटरी के साथ है।

ज्योति केन्द्र—क्रोध, वासना आदि को उपशांत करने का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है। इस पर ध्यान करने से भयंकर से भयंकर क्रोध शांत हो जाता है। ज्योति केन्द्र पर श्वेत रंग का ध्यान आवेग, आवेश, उत्तेजना आदि के शमन का उत्तम उपाय है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

१२-१३ वर्ष की अवस्था के बाद पिनियल ग्लैण्ड निष्क्रिय होना शुरू हो जाता है। उसकी निष्क्रियता के कारण क्रोध, काम, भय आदि संज्ञाएं उच्छृंखल बन जाती हैं। अपराधी मनोवृत्ति को भी बल मिलता है। यदि किशोरावस्था से ही ध्यान का प्रयोग कर उसे सक्रिय रखा जा सके, तो एक सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण किया जा सकता है।

दर्शन केन्द्र भी चैतन्य का बहुत बड़ा केन्द्र है। इसकी बहुत क्षमताएं हैं। कुछ शरीरशास्त्रियों ने इसे एक प्रकार से सर्वज्ञता का केन्द्र कहा है। इसी को आज्ञाचक्र या तृतीय नेत्र भी कहा जाता है। यह मस्तिष्क और तालू के नीचे भृकुटी के बीच गहरे में आगे जाकर है। पश्चिम के साधकों ने 'थर्ड आई' (तीसरी आंख) के नाम से इसकी बहुत चर्चाएं की हैं और इस पर अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं।

कोई साधक यदि तीन घंटा तक दर्शन केन्द्र पर केन्द्रित हो सके, एकाग्र रह सके, तो वह दस दिन बाद यह नहीं कहेगा कि चेतना के जागरण का कोई मार्ग नहीं है। तीन घंटे के अन्तराल में कोई दूसरा विकल्प न आने पाए। कठिन अवश्य है। सामान्यतः एक-दो मिनट या पांच मिनट तक भी एक धारा में चल पाना कठिन होता है, उस स्थिति में एक साथ तीन घंटा रह पाना अत्यन्त दुष्कर है। जो साधक दस-पन्द्रह मिनट के अभ्यास तक पहुंच जाता है वह यह अनुभव कर सकता है कि तीन घंटे तक एकाग्र रहने वाला सचमुच मार्ग को पा जाता है, उसका भटकाव मिट जाता है। पूर्वाभास (Precognition), अन्तर्दृष्टि (Intuition) आदि अतीन्द्रिय क्षमताओं के विकास का यह एक स्रोत है।

दर्शन केन्द्र पिच्यूटरी ग्लैण्ड (पीयूष ग्रन्थि) का क्षेत्र है तथा जिसकी सक्रियता और निष्क्रियता से हमारे निर्णय प्रभावित होते हैं। पिच्यूटरी के फेल हो जाने पर आदमी सही निर्णय नहीं ले पाता। पीयूष ग्रन्थि की ये सारी प्रवृत्तियां दर्शन केन्द से जुड़ी हुई हैं।

ज्योति केन्द्र और दर्शन केन्द्र दोनों ही चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा से ये केन्द्र जागृत होते हैं। जब ये जागृत होते हैं, पिनियल और पिच्यूटरी ग्लैण्ड की सक्रियता बढ़ जाती है, और एड्रीनल या गोनाड्स पर उनका नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। एड्रीनल और गोनाड्स के कारण ही काम-वासना, उत्तेजना, आवेग आदि-आदि जागृत होते हैं। पिनियल और पिच्यूटरी के द्वारा जब इन ग्रन्थियों को नियन्त्रित या प्रभावित कर दिया जाता है, तो

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

कामवृत्तियां अनुशासित हो जाती हैं, आवेग कम हो जाते हैं, अपूर्व आनन्द की वृत्ति जागृत हो जाती है। जो व्यक्ति ज्योति केन्द्र या दर्शन केन्द्र को जागृत करना नहीं जानता और ब्रह्मचारी बनने की बात करता है या प्रयत्न करता है तो वह सचमुच पागल की अवस्था तक पहुंच सकता है। मनोविज्ञान का भी यही सिद्धान्त है। पिच्यूटरी या पिनियल को सक्रिय किए बिना कोई ब्रह्मचारी होने का प्रयत्न करता है तो वह निश्चित ही विषाद से भर जाता है, अर्ध-उन्माद की स्थिति में चला जाता है।

ज्योति केन्द्र और दर्शन केन्द्र की प्रेक्षा करने वाला साधक शिव बन जाता है। वह तृतीय नेत्र को सक्रिय बनाकर काम का दहन कर सकता है। पिनियल को सक्रिय बनाकर, गोनाड्स को नियन्त्रित कर सकता है, पिच्यूटरी को सक्रिय बनाकर एड्रीनल को नियन्त्रित कर सकता है। वह स्रावों को बदल कर काम से अकाम बन जाता है।

अध्यात्म-त्योतिष के अनुसार दर्शन केन्द्र और ज्योति केन्द्र दोनों पर बृहस्पति (ज्यूपीटर) का प्रभाव है।

विशुद्धि केन्द्र

कंठ का स्थान विशुद्धि केन्द्र का स्थान है। यह थाइराइड ग्लैण्ड का प्रभाव क्षेत्र है। सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. एम. डब्ल्यू. काप के अनुसार–"उच्चतर चेतना और आत्मिक शक्तियों के विकास और प्रादुर्भाव के लिए थाइराइड की बहुत ही अधिक आवश्यकता है। थाइराइड का प्रमुख स्राव–थाइराक्सीन विशुद्ध आयोडीन है। थाइराइड के स्राव व्यक्ति के जीवन की गति को नियन्त्रित करते हैं। जब थाइराइड ग्रन्थि सक्रिय होती है, तब जीवन की क्षमता और तीव्रता अधिक हो जाती है। जिस व्यक्ति में थाइराइड की सक्रियता मन्द हो जाती है, उसे 'क्रेटीन' कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति अपने जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप में मन्द, विचित्र और निष्क्रियता का प्रदर्शन करता है। ऐसा लगता है जैसे क्रेटीन में आत्मा ही नहीं है–उसकी मानसिक और आध्यात्मिक चेतना समाप्त-सी हो जाती है।"[१] शारीरिक दृष्टि से भी थाइराइड महत्वपूर्ण क्रियाओं के लिए जिम्मेवार है। विकास, चयापचय, पाचन आदि के ऊपर इस ग्रन्थि के स्रावों का प्रभाव होने से इस ग्रन्थि के सम्यग् नियोजन से ये सारी शारीरिक प्रक्रियाएं सुचारू रूप से चल सकती हैं।

---

१. Glands–Our Invisible Guardians, P.29

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

विशुद्धि केन्द्र की प्रेक्षा के द्वारा इस केन्द्र को विकसित किया जाए, तो वासनाओं पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। इतना ही नहीं वरन् उनका उदात्तीकरण यानि निर्मलीकरण किया जा सकता है। विशुद्धि केन्द्र की प्रेक्षा से हमारी वृत्तियां सहज रूप में शांत हो जाती हैं तथा हमारी आध्यात्मिक शक्तियों का उद्घाटन होता है। चित्त की एकाग्रता का भी यह एक बहुत बड़ा माध्यम है। ठुड्डी को कंठकूप में लगाने पर विशुद्धि केन्द्र प्रभावित होता है और चित्त शांत हो जाता है।

मन का इस केन्द्र के साथ गहरा सम्बन्ध है। अध्यात्म-ज्योतिष के अनुसार इस केन्द्र पर चन्द्रमा का प्रभाव है। ज्योतिष में मानसिक अवस्थाओं का अध्ययन चन्द्रमा की अवस्थिति के आधार पर किया जाता है।

आनंद केन्द्र

फुफ्फुस के नीचे हृदय की पार्श्ववर्ती स्थान आनन्द केन्द्र है। यह एक बहुत महत्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। यह थायमस-ग्रंथि का प्रभाव-क्षेत्र है। डॉ. कॉप के अनुसार–"वयस्कावस्था तक यह ग्रंथि शिशु के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। काम-ग्रन्थियों–वृषण एवं डिम्बाशय–की क्रियाओं का निरोध करती है। वयस्कावस्था के बाद इसकी क्रिया मन्द हो जाती है।"[1]

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

आनन्द केन्द्र की प्रेक्षा से इस केन्द्र का जागरण होने पर साधक बाह्य जगत् से छूट कर भीतर के जगत् में प्रवेश पा जाता है। काम-वासना के परिशोधन में इस केन्द्र का भी महत्वपूर्ण स्थान है। जब तक सहज आनन्द सक्रिय रहता है, तब तक कामवासना अधिक नहीं सताती। इस केन्द्र की निष्क्रियता होने पर ही वासना की उग्रता बढ़ती है। आनन्द केन्द्र की प्रेक्षा, भावधाराओं को निर्मल एवं परिष्कृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अध्यात्म-ज्योतिष के अनुसार यह मंगल का प्रभाव-क्षेत्र है।

तैजस केन्द्र

नाभि का स्थान तैजस केन्द्र का क्षेत्र है। इसका सम्बन्ध एड्रीनल (अधिवृक्क) ग्रंथि और वृक्क (गुर्दे) के साथ है। डॉ. काप के अनुसार–"जहां एक ओर एड्रीनल ग्रंथियां व्यक्ति के लिए ऊर्जा का स्रोत है और उसकी

---

१. Glands–Our Invisible Guardians, P.39

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

पाचन-क्रिया के समग्र रसों और स्रावों का भी मूलभूत आधार है–यहां से लार ग्रंथियों से स्रावित लार, पाचक किण्वकों–पेप्सिन, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, पित्तीय रस, क्लोम ग्रंथि के स्राव एवं यान्त्रिक स्रावों आदि के उत्पादन को प्रभावित किया जाता है, वहां दूसरी ओर ईर्ष्या, घृणा, भय, संघर्ष, तृष्णा आदि वृत्तियों को भी यहां से उत्तेजना मिलती हैं।"[1]

योग की प्राचीन मान्यता है कि क्रोध, लोभ, भय आदि सभी वृत्तियां इसी केन्द्र द्वारा अभिव्यक्त होती हैं। भाव-विशुद्धि के द्वारा उनकी अभिव्यक्ति को रोका जा सकता है।

तैजस केन्द्र अग्नि का स्थान है, यहां बहुत उष्मा है, तेजस्विता है जहां गर्मी होती है, वहां हर चीज में उभार आता है। इस केन्द्र पर ध्यान एकाग्र किया जाता है, तो वृत्तियों में उभार आता है, वासना में उभार आता है। इसलिए यह आवश्यक है कि इसके साथ-साथ विशुद्धि केन्द्र को भी जागृत किया जाए। विशुद्धि केन्द्र और तैजस केन्द्र का परस्पर सम्बन्ध है। दोनों केन्द्रों को साथ-साथ जागृत करना होता है। यदि ऐसा होता है तो तेजस्विता बढ़ती है, शक्ति का संचय होता है, वृत्तियां शांत होती हैं।

अध्यात्म-ज्योतिष के अनुसार तैजस केन्द्र सूर्य का स्थान है।

स्वास्थ्य केन्द्र और शक्ति केन्द्र

पृष्ठरज्जु के नीचे से यह बहुत ही महत्वपूर्ण मूलाधार या शक्तिकेन्द्र कहलाता है। साधना की दृष्टि से यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह विद्युत् का केन्द्र है। हमारी समस्त शारीरिक ऊर्जा–जैविक विद्युत् (वायो-इलेक्ट्रीसिटी) का यह संचयगृह है। यहां विद्युत् का उत्पादन होता है और यहीं से उसका प्रसारण होता है। किसी भी चैतन्य केन्द्र पर मन एकाग्र होते ही नीचे के स्नायुओं का संकुचन होगा। इसे मूलबंध कहते हैं। विद्युत् की धारा जो नीचे की ओर प्रवाहित हो रही थी, उसका ऊर्ध्वीकरण होता है। साधना की दृष्टि से शक्ति केन्द्र का स्थान मूल स्थान है। यही कुण्डलिनी का स्थान है।

पेडू के नीचे जननेन्द्रिय का अधोवर्ती स्थान स्वास्थ्य केन्द्र है। ग्रंथि-तंत्र की दृष्टि से यह गोनाड्स (कामग्रंथि) का प्रभाव-क्षेत्र है। काम-ऊर्जा की अभिव्यक्ति का स्थान है। साथ ही हमारे समग्र स्वास्थ्य को सही

---

१. Glands–Our Invisible Guardians, P.32-33

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

स्थिति में बनाए रखने का दायित्व भी गोनाड्स पर है। गोनाड्स के स्राव काम-ऊर्जा के साथ पूरे स्वास्थ्य का नियंत्रण करते हैं। आदमी उतना ही मन से और भावना से स्वस्थ होगा, जितना कि स्वास्थ्य केन्द्र उसका अधिक नियमित होगा, वश में होगा, सधा हुआ होगा।

शक्ति केन्द्र और स्वास्थ्य केन्द्र को यदि हम स्वस्थ बनाए रखते हैं, सारा विकास सहज-सरल होगा। यदि हमने इन्हें ठीक से समझ लिया, पकड़ लिया, तो ऊपर के केन्द्रों का विकास करना सुगम हो जाएगा। इन केन्द्रों को विद्युतधारा का उपयुक्त सिंचाव मिलेगा, पोषण मिलेगा; इसीलिए इन केन्द्रों पर भी ध्यान केन्द्रित करना बहुत जरूरी है। इन केन्द्रों की प्रेक्षा के साथ ऊपर के केन्द्रों की प्रेक्षा भी कर लेनी चाहिए, ताकि वृत्तियों का उभार न हो।

अध्यात्म ज्योतिष के अनुसार शक्ति केन्द्र बुद्ध और राहु का प्रभाव क्षेत्र है तथा स्वास्थ्य केन्द्र शुक्र का प्रभाव क्षेत्र है।

ब्रह्म केन्द्र

जिह्वाग्र का स्थान ब्रह्म केन्द्र है। इसकी प्रेक्षा से ब्रह्मचर्य की साधना पुष्ट होती है। यह एक सूक्ष्म नियम है कि हमारी पांचों ज्ञानेन्द्रियों का पांच कर्मेन्द्रियों के साथ निकट का सम्बन्धं है। तन्त्रशास्त्र के पांच तत्वों की मीमांसा है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पांच तत्वों की क्रमशः पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं—घ्राण, जिह्वा, चक्षु, स्पर्शन और श्रोत्र तथा पांच कर्मेन्द्रियां हैं—अपान, जननेन्द्रिय, पैर, हाथ और वाक्। इस प्रकार जीभ का और जननेन्द्रिय का निकट का सम्बन्ध है। ये दोनों जल तत्व से सम्बद्ध हैं। दोनों का गहरा संबद्ध हैं। जब जिह्वा को रस अधिक मिलेगा, तो कामुकता बढ़ेगी। रस (जल तत्व) दोनों को पुष्ट करता है, सिंचन देता है।

रस का संयम और जिह्वाग्र की प्रेक्षा—दोनों ब्रह्मचर्य के साधक हैं। जिह्वाग्र की प्रेक्षा करते समय जीभ को अधर में रखा जाता है और उसके अग्र भाग पर विशेष प्रकार के स्पन्दनों का अनुभव होता है। जीभ पर संयम करना, जीभ को स्थिर रखना, जीभ को शिथिल करना, मौन करना, उसकी प्रेक्षा करना—ये सब ब्रह्मचर्य में सहायक होते हैं।

अप्रमाद केन्द्र

हमारे कान और उसके आस-पास का कनपट्टी का हिस्सा एक प्रबल

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

चैतन्य केन्द्र है–यह अप्रमाद केन्द्र है। व्यसन का सेवन प्रमाद की निष्पत्ति है। अप्रमाद केन्द्र की प्रेक्षा से अपने आप व्यक्ति व्यसन से मुक्त हो जाता है। रूस के वैज्ञानिकों ने व्यसन-मुक्त करने के लिए अप्रमाद केन्द्र पर विद्युत्-प्रवाह के प्रयोग किए और सफलता प्राप्त की। लोक-परम्परा में भी विस्मृति होने पर अपना कान पकड़ा जाता है। गलती करने वाले का कान पकड़ कर ऐंठा जाता है। ये सारे अप्रमाद केन्द्र को प्रभावित करने के लिए किये जाते हैं। ये सारे अप्रमाद केन्द्र को प्रभावित करने के लिए किये जाते हैं। अप्रमाद केन्द्र की प्रेक्षा वहां के विशेष स्नायु-तंतुओं को चैतन्यशील बनाकर व्यक्ति की स्मृति को तीव्र करती है और व्यसन से पैदा होने वाली मूर्छा को तोड़कर व्यक्ति को व्यसन-मुक्त बनाती है।

प्राण केन्द्र

नासाग्र पर ध्यान करने की परम्परा बहुत पुरानी है। यह प्राण का मुख्य केन्द्र है। इस पर ध्यान करने से प्राण पर अधिकार प्राप्त होता है। प्रकाश-दर्शन, पूर्वाभास, दूराभाष, सुगन्ध का अनुभव–ये प्राण केन्द्र पर किए जाने वाले ध्यान के परिणाम हैं। एकाग्रता की सिद्धि के लिए यह महत्वपूर्ण केन्द्र है। अनिमेष प्रेक्षा के लिए इसका अभ्यास बहुत उपयोगी है। इससे संकल्प शक्ति का विकास होता है।

चाक्षुष केन्द्र

चित्त की सहज एकाग्रता के लिए यह बहुत प्रभावशाली केन्द्र है। इसके माध्यम से मस्तिष्कीय विद्युत् के साथ सीधा संबंध स्थापित होता है। यह जीवनी-शक्ति का केन्द्र है और इस पर दीर्घकालीन अभ्यास से दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

उपसंहार

ऊपर हमने एक-एक कर चैतन्य केन्द्र की चर्चा की तथा प्रत्येक केन्द्र की प्रेक्षा से होने वाली निष्पत्ति की चर्चा की। अब हम समग्र रूप से चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा की निष्पत्ति पर विचार करेंगे।

शारीरिक निष्पत्ति

शरीर में भी परिवर्तन आना चाहिए, रसायन बदलने चाहिए। रासायनिक संतुलन के दो मुख्य स्रोत हैं–एक पिच्यूटरी, दूसरा एड्रीनल। ये ग्रन्थियां शारीरिक रासायनिक संतुलन के लिए जिम्मेवार हैं। साधना के

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

द्वारा इन ग्रन्थियों के स्रावों (हार्मोनों) में यदि परिवर्तन नहीं हुआ, रसायन नहीं बदले तो फिर मानना चाहिए कि साधना ठीक नहीं सध रही है।

दूसरी बात है कि हमारे शरीर में सैकड़ों-सैकड़ों चैतन्य को जगाने वाले विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र (Electro-magnetic fields) हैं। वे सब निर्मल बनने चाहिए। वे निर्मल नहीं बनते, मलिन रह जाते हैं, तो फिर उनमें से ज्ञान की रश्मियां बाहर नहीं आ सकतीं और व्यक्ति का ज्ञान प्रज्ञा की कोटि में नहीं आ सकता। प्रज्ञा तब जागती है जब शरीर में ये चैतन्य को जगाने वाले क्षेत्र निर्मल बन जाते हैं।

मानसिक निष्पत्ति

निष्पत्ति का दूसरा पहलू है–मानसिक संतुलन। सामान्यतः तो थोड़ा-सा उत्तेजना का वातावरण होता है, दिमाग गरम हो जाता है। थोड़ी-सी प्रशंसा का, पूजा का, लाभ का, सम्मान का वातावरण होता है, मन प्रफुल्लित हो जाता है। मन संतुलित नहीं होता, तो एक राई जितनी घटना पहाड़ जितनी बन जाती है। साधना जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, मन का संतुलन बढ़ता जाता है। जिसके मन का संतुलन होता है, वह बहुत बड़ी बात को एक मिनट में समाप्त कर देता है। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा की निष्पत्ति है–मन का संतुलन।

आध्यात्मिक निष्पत्ति

आदतों का परिवर्तन

निष्पत्ति का तीसरा पहलू है–आध्यात्मिकता। आध्यात्मिक निष्पत्ति का प्रथम सूत्र है आदतों का बदलना। साधना करें, आराधना करें, ध्यान करें और आदतें न बदलें : उतना ही गुस्सा, उतना ही अहंकार, उतना ही कपट, उतना ही लालच, उतनी ही घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, बराबर चलता रहे, यह नहीं हो सकता।

आदतों को बदलने का कारण है–मन की यात्रा का परिवर्तन और ग्रन्थि-तंत्र का परिष्कार। जब मन की यात्रा नाभि, पेडू और नीचे की ओर न होकर हृदय, कण्ठ, नासाग्र, भृकुटि और सिर की ओर होती है, तब हमारी ग्रन्थियां शुद्ध होने लगती हैं, आदतों में अपने आप परिवर्तन होने लग जाता है। उनमें स्वभावतः रूपान्तरण शुरू हो जाता है। तब आदतों

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

को पोषण देने वाले स्रावों में रासायनिक रूपान्तरण शुरू हो जाता है और आदतों को पोषण देने वाला कोई नहीं रहता।

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा से आदतें बदलती हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि जिस दिन ध्यान शुरू किया, उसी दिन व्यक्ति बिलकुल बदल जाएगा। किन्तु परिवर्तन का क्रम शुरू हो जाएगा।

अन्तःकरण का परिवर्तन

हमारी साधना परिवर्तन की साधना है। यह केवल कपड़े बदलने या शरीर को बदलने की साधना-मात्र नहीं है। यह अन्तःकरण को बदलने की साधना है।

चैतन्य केन्द्र-प्रेक्षा की निष्पत्ति है—अन्तःकरण का परिवर्तन। हमारे शरीर में अनेक चैतन्य केन्द्र हैं। कभी हम उनमें से एक-एक की प्रेक्षा करते हैं, कभी वर्तुलाकार में एक साथ उनकी प्रेक्षा करते हैं। उन पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। जैसे ही हमारी मानसिक आंखें उन केन्द्रों पर टिकती हैं, वे सक्रिय, संतुलित हो जाते हैं। उनके स्रावों में परिवर्तन होने लगते हैं।

जो कर्म-शरीर के सक्रिय गुप्तचर थे, वे हमारी चेतना के गुप्तचर बन जाते हैं, हमारे अधीन हो जाते हैं। वे गुप्तचर नहीं, खुलेचर बन जाते हैं। सारी क्रियाओं में परिवर्तन आता है, तब अन्तःकरण अपने आप बदल जाता है।

एक चैन-स्मोकर शिविर में रहा। शिविर में आने से पूर्व उसको कहा—"सिगरेट से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, उसे छोड़ दो।" उसने कहा—'दुनिया में इतने पदार्थ हैं। यदि व्यक्ति उनका उपभोग न करे, तो फिर बनाये ही क्यों जाएंगे? यदि हम सिगरेट न पीयें, तो क्या आर्थिक दृष्टि से समाज घाटे में नहीं रहेगा?' ये तर्क हैं उस आदमी के। स्पष्ट है कि तर्क के द्वारा उसे नहीं समझाया जा सकता था। उस व्यक्ति ने ध्यान का क्रम सीखा। चैतन्य केन्द्रों पर चित्त एकाग्र करना सीखा। ध्यान की साधना आगे बढ़ी। उसके स्रावों में परिवर्तन होने लगा। इसका प्रभाव उसके नाड़ी-तंत्र पर पड़ा, जिससे उसके स्नायुओं ने जो धूम्रपान करने के लिए उसे बाध्य करते थे, अपनी मांग छोड़ी दी। धीरे-धीरे उसका अन्तःकरण बदलने लगा। उसको सिगरेट से घृणा हो गई और यह स्थिति आ गई कि उसके पास यदि कोई सिगरेट पीता तो उसे वमन जैसा होने लगता। यह है अन्तःकरण का रूपान्तरण।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

चैतन्य-केन्द्र, करण और अवधिज्ञान

हम यह चर्चा कर चुके हैं कि हमारा समूचा शरीर चैतन्य-केन्द्र है। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा और शरीर प्रेक्षा की एक निष्पत्ति है–अतीन्द्रिय ज्ञान–अवधिज्ञान। अवधिज्ञानी व्यक्ति का देखने का माध्यम है–शरीर को जब अवधिज्ञान की प्राप्ति होती है तो समूचा शरीर या शरीर के कुछ हिस्से अवधिज्ञान के माध्यम बन जाते हैं, उन्हें 'करण' कहते हैं। शरीर से ही चैतन्य की रश्मियां निकलेंगी अर्थात् अवधिज्ञान की ज्योति प्रगट होगी तो शरीर से ही होगी। यह शरीर एक ढक्कन है। जब तक केवल स्नायविक संस्थान के माध्यम से ही हम जानते-देखते हैं, तब तक शरीर करण नहीं बनता। किन्तु जब हम प्रेक्षा-ध्यान का प्रयोग करते हैं, तब हम समूचे शरीर को या कुछ स्थानों को करण बना सकते हैं। यह इसलिए होता है कि हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका में करण बनने की क्षमता है। वह पारदर्शी, निर्मल और तैजस् बन सकती है और सारे आवरणों को दूर कर सकती है। आवश्यकता है करण बनाने की। यदि पूरा शरीर करण नहीं बनता, केवल दायां कंधा करण बनता है, तो अवधिज्ञानी साधक केवल दाएं कंधे से देखेगा, यदि बायां कंधा करण बनता है, तो बाएं कंधे से देखेगा; यदि आगे के चैतन्य केन्द्र करण बन गए तो आगे से देखेगा; और यदि पीछे सुषुम्ना से कोई केन्द्र करण बन गया तो पीछे से देखेगा; यदि ज्ञान केन्द्र (सहस्रार) करण बन गया तो सिर से देखेगा। ये सारे देशावधिज्ञान हैं अर्थात् शरीर के किसी एक हिस्से से जानना और देखना। सर्वावधिज्ञान वह है, जब पूरे शरीर से देखना होता है।

विविध आकार के करण

योग-शास्त्र में कमल और चक्र–ये दो शब्द मिलते हैं। हमारे शरीर में नाभि-कमल, हृदय-कमल आदि कमल हैं, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र आदि चक्र हैं। जैन आचार्यों ने बताया कि शरीर का जो अवयव करण बनता है, उसमें केवल कमल और चक्र दो ही आकार नहीं बनते, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त्त, कलश आदि अनेक शुभ आकार बनते हैं। जब तक चैतन्य केन्द्र जागृत नहीं होते, तब तक वे गिरगिट जैसे भद्दे आकार के होते हैं। जब वे जागृत हो जाते हैं, आन्तरिक शुद्धि होती है, तब ये सारे पवित्र और सुन्दर आकार वाले हो जाते हैं।

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा के तीन परिणाम

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा के द्वारा ये तीन काम हो सकते हैं–चैतन्य-केन्द्र

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

निर्मल हो सकते हैं, आनन्द-केन्द्र जो सोया पड़ा है, मूर्च्छित है, वह जाग सकता है और शक्ति का संस्थान जो अवरूद्ध हो रहा है, विघ्न और बाधाओं से प्रताड़ित हो रहा है, वह फिर सक्रिय हो सकता है और उसकी ज्योति प्रज्वलित हो सकती है।

चैतन्य-केन्द्रों का निर्मलीकरण

पुराने जमाने में रत्नकंबल होते थे। उनकी धुलाई पानी में नहीं अग्नि में होती थी। आग में डालो और रत्नकंबल निर्मल बन जाएगा। पानी में डालो, कुछ भी परिवर्तन नहीं होगा। हमारे चैतन्य-केन्द्र रत्न केन्द्र हैं। इनकी धुलाई पानी से नहीं होती। इनका मैल पानी से साफ नहीं होता। इनकी सफाई होगी आग के द्वारा। जब हम चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा करते हैं तब विद्युत् की धारा, प्राण की धारा वहां इतनी तेज हो जाती है कि जमा हुआ मैल साफ हो जाता है और वह विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र शुद्ध बन जाता है। निर्मलता आ जाती है और उस निर्मलता में से चैतन्य अभिव्यक्त हो सकता है, बाहर प्रकट हो सकता है। सामान्य नियम को लोग जानते हैं कि जब लालटेन का शीशा अन्धा हो जाता है, बाहर पूरा प्रकाश नहीं आता। बल्ब पर ढक्कन दे दिया, बाहर प्रकाश नहीं आएगा। लाल रंग या लाल प्लास्टिक का टुकड़ा लगाने पर लाल रंग और पीला रंग या प्लास्टिक का टुकड़ा लगाने पर पीला रंग आएगा। हमारा चैतन्य केन्द्र निर्मल नहीं होगा, तब तक भीतर में ज्ञान कितना ही भरा पड़ा है, वह बाहर नहीं फूटेगा, उसकी रश्मियां बाहर को प्रकाशित नहीं कर पाएंगी। इसलिए चैतन्य-केन्द्रों को निर्मल बनाना जरूरी है। शरीर-प्रेक्षा के द्वारा ये चैतन्य-केन्द्र निर्मल हो जाते हैं। चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा से और अधिक प्राणधारा वहां इकट्ठी होती है और वे और अधिक निर्मल बन जाते हैं। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का महत्वपूर्ण परिणाम है–चैतन्य केन्द्रों की निर्मलता।

आनन्द केन्द्र का जागरण

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का एक परिणाम है–आनन्द-केन्द्र का जागरण। हमारे चित्त में ऐसे केन्द्र हैं कि जिनके जाग जाने पर व्यक्ति सदा सुख की स्थिति में रहता है। विज्ञान की भाषा में दो लघु ग्रंथियां हैं पिछले भाग में; एक सुख की और एक दुःख की। दोनों सटी हुई हैं। एक ग्रंथि जागृत हो तो व्यक्ति सुख में रहता है, दूसरी जागृत हो जाए तो आदमी दुःखी बन जाता है। आनन्द का केन्द्र भी हमारे भीतर है। यदि विद्युत् का, प्राण-धारा

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

का ठीक प्रवाह वहां पहुंचे, पूरा ताप लगे और उसे जगा पाएं, तो फिर आनन्द ही आनन्द हो जाता है। समता, साम्य, अनुकूल और प्रतिकूल स्थिति में एक समान भाव रहना यह असम्भव नहीं है, सम्भव है। हजारों-हजारों साधकों ने इस स्थितियों को सम्भव बनाया। जीवन जीया। कठिनाई आने पर कोई परिवर्तन नहीं आया। यह तभी सम्भव है कि वह आनन्द का केन्द्र, समता का केन्द्र जागृत हो जाए। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा के द्वारा वह केन्द्र जागृत होता है।

शक्ति का जागरण

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का एक परिणाम है—शक्ति का जागरण। हमारे शरीर में जो शक्ति के केन्द्र हैं, उन्हें हम चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा द्वारा जागृत करते हैं। शक्ति केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र, तैजस् केन्द्र, विशुद्धि केन्द्र—ये सारे केन्द्र हमारी तैजस् शरीर (सूक्ष्म शरीर) की शक्ति के साथ सम्बन्धित हैं। हमारी सुषुम्ना—स्पाइनल कोर्ड में प्राणधारा को प्रवाहित करना, उसे ऊर्ध्वगामी बनाना, उसे शक्ति केन्द्र से ज्ञान केन्द्र की ओर ले जाना, यह सब सुषुम्ना की प्रेक्षा से—अन्तर्यात्रा से सम्भव हो सकता है। नीचे के केन्द्र में संगृहीत प्राण-ऊर्जा, तैजस् शक्ति को चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा के माध्यम से जागृत किया जा सकता है तथा उसके सम्यग् नियोजन से उसका उपयोग आध्यात्मिक साधना में किया जा सकता है।

हम चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा करें। प्रेक्षा के द्वारा—देखने और जानने के द्वारा ये सारी बातें घटित हो सकती हैं—क्रोध, अभिमान, वासना, स्वार्थ-चेतना, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा—ये सारी वृत्तियां तब जागती हैं जब हमारा चित्त नाभि के आस-पास होता है। मनुष्य का चित्त ज्यादा नाभि के आस-पास होता है। मनुष्य का चित्त ज्यादा नाभि से नीचे ही काम करता है, ऊपर काम नहीं करता, ऊपर नहीं रहता। उसे पता ही नहीं कि नीचे रहने से क्या होता है ? हम इस सचाई को जान लें कि चित्त को अधिक से अधिक हृदय से ऊपर, कंठ से ऊपर, सिर तक रखना लाभदायक होता है। बार-बार वहीं रखें तो हमारी वृत्तियां समाप्त हो सकती हैं, स्वभाव बदल सकता है, व्यवहार बदल सकता है और चरित्र बदल सकता है। यह बहुत बड़ा रहस्य है व्यवहार और आचरण को बदलने का, स्वभाव और आदतों को बदलने का।

साधना के द्वारा मानवीय सम्बन्ध भी बदलते हैं। एक व्यक्ति

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

ध्यान-साधना करने वाला है और एक व्यक्ति साधना करने वाला नहीं है। यदि मानवीय सम्बन्धों के सन्दर्भ में दोनों समान हों, तो ध्यान करने की कोई सार्थकता नहीं हो सकती। जब स्वभाव का परिवर्तन होगा, तो मानवीय सम्बन्धों में अवश्य ही अन्तर आएगा।

प्रेक्षा-ध्यान का अभ्यास करने वाला साधक—अपने चैतन्य केंद्रों को देखने वाला साधक—शरीर के कण-कण में चैतन्य का अनुभव करने वाला साधक समता की स्थिति में चला जाता है। जब जीवन में समता घटित होती है तब सारा आचरण बदल जाता है, सम्बन्धों के प्रकार बदल जाते हैं। सब आचरणों में परम आचरण है—समता। जिस व्यक्ति के आचरण में समता और व्यवहार में मृदुता आ जाती है उसके सारे सम्बन्ध सुधर जाते हैं।

मानवीय सम्बन्धों में ये तीन कठिनाइयां मुख्य हैं—विषमता, कठोरता और प्रतिक्रिया। पहली कठिनाई है विषमता की। पिता की दृष्टि पुत्रों के प्रति सम नहीं होती, माता की दृष्टि पुत्रियों के प्रति सम नहीं होती, तब सम्बन्धों में विकृति आने लग जाती है। सामाजिक व्यवस्था में जहां-जहां विषमता है, वहां-वहां उपद्रवों का होना अनिवार्य है।

आचरण की, व्यवहार की, मानवीय सम्बन्धों की सबसे बड़ी समस्या है—विषमता की। विषमता यदि परिवार में हो तो परिवार सुखी नहीं हो सकता। विषमता यदि समाज में हो तो समाज सुखी नहीं हो सकता।

दूसरी कठिनाई है—कठोरता की। व्यक्ति को अपने से बड़े व्यक्ति के साथ मृदु व्यवहार करना पड़ता है, किन्तु वह अपने से छोटे के साथ मृदु व्यवहार नहीं करता। छोटे व्यक्ति के साथ मृदु व्यवहार करने पर बड़प्पन ही कैसे सुरक्षित रह सकता है, यह धारणा रूढ़ हो गई है। एक मालिक अपने नौकर के साथ मृदु व्यवहार करने में कठिनाई का अनुभव करता है। किन्तु बराबर के साथी के साथ विनम्र और मृदु व्यवहार करने में वह गौरव अनुभव करता है। उपरोक्त धारणा ने सारे व्यवहार को अव्यवस्थित कर डाला है और मानवीय सम्बन्धों में बहुत बड़ी दरार पैदा कर दी है। लोग इस बात को भूल जाते हैं कि मैत्री और निर्मल प्रेमपूर्ण भावनाओं के द्वारा आदमी को जितना प्रेरित किया जा सकता है, उतना कठोर व्यवहार से नहीं किया जा सकता।

तीसरी कठिनाई है—प्रतिक्रिया की। व्यक्ति मान लेता है कि क्रिया की प्रतिक्रिया होनी ही चाहिए। कोई आवेशपूर्ण बात कहता है, तो प्रत्युत्तर

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

में ईंट का जवाब पत्थर से न दे, तो फिर आदमी ही क्या? आदमी में कुछ होता तो प्रतिक्रिया अवश्य होती और वह ऐसा करता कि सामने वाला दब जाए, ऐसी मनःस्थिति प्रायः सभी मनुष्यों की होती है। क्रिया की प्रतिक्रिया करना मानो उसका स्वभाव ही बन गया है।

चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा करने वाला साधक मानवीय संबंधों की इन कठिनाइयों से बचने का प्रयत्न करता है। वह अधिक से अधिक जागरूक रहता है। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता है, आदतें बदलती जाती हैं, स्वभाव बदलता जाता है। स्वभाव को बदलने का और कोई माध्यम नहीं है। मनोवैज्ञानिकों ने यह मान रखा है कि अर्जित आदतें या मौलिक मनोवृत्तियां बदली जा नहीं सकती। किन्तु साधना में ऐसा नहीं माना जाता। साधना का कोई अर्थ नहीं रहता यदि मन नहीं बदलता, स्वभाव नहीं बदलता। यह सत्य है कि पांच या दस दिन में ही सब कुछ नहीं बदल सकता। साधना के द्वारा बदला जा सकता है। किन्तु तभी सम्भव है कि जब अभ्यास की क्रिया निरन्तर चलती रहे। स्वभाव के परिवर्तन का बहुत बड़ा साधन है चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा।

ध्यान की साधना के द्वारा स्वभाव का परिवर्तन और मानवीय, सम्बन्धों का परिवर्तन तब घटित हो सकता है जब प्रतिदिन हमारे मन पर जमने वाले मलों का शोधन होता रहे। प्रतिदिन मल जमता रहता है, पसीना आता है, शरीर पर मैल जम जाता है। धूल उड़ती है, शरीर और कपड़े मैले हो जाते हैं। आदमी इनके मैल को पानी से धो डालता है। किन्तु वह इस ओर ध्यान नहीं देता कि मन पर प्रति-पल कितना मैल जमता जाता है! उस मैल को हटाने को वह नहीं सोचता, कितने आश्चर्य की बात है? जब तक इस मैल को नहीं धोया जाता तब तक स्वभाव का परिवर्तन या मानवीय सम्बन्धों में परिवर्तन करने की कल्पना केवल कल्पना मात्र ही रह जाती है। कुछ भी यथार्थ घटित नहीं हो सकता। यह चिन्तन केवल दुश्चिंतन और तर्कणा रह जाती है। कोई परिणाम नहीं आ सकता। सबके मूल में है शोधन।

प्रेक्षा-ध्यान की साधना के द्वारा आदमी के स्वभाव में परिवर्तन आता है, साथ-साथ मानवीय सम्बन्धों में भी परिवर्तन घटित होता है। यदि मानवीय सम्बन्धों में कोई परिवर्तन घटित न हो और आदमी पहले जैसा ही कठोर, निर्दय और क्रूर बना रहे तो समझ लेना चाहिए कि ध्यान जीवन में उतरा नहीं है, जीवन में उसका प्रवेश ही नहीं हो पाया है। ●

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

जीवन विज्ञान ग्रंथमाला में प्रकाशित पुस्तकें

प्रेक्षाध्यान : प्राण-विज्ञान	–गणाधिपति तुलसी
प्रेक्षाध्यान : आधार-स्वरूप	–आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : शरीर विज्ञान	–आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : कायोत्सर्ग	–आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : श्वास-प्रेक्षा	–आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा	–आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : लेश्या-ध्यान	–आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : अनुप्रेक्षा	–आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग	–आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : आहार विज्ञान	–आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति	–आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : स्वास्थ्य विज्ञान, भाग १–२	–मुनि महेन्द्रकुमार जेठाभाई झवेरी
प्रेक्षाध्यान : आसन-प्राणायाम	–मुनि किशनलाल
प्रेक्षाध्यान : यौगिक क्रियाएं	–मुनि किशनलाल
प्रेक्षाध्यान : एक परिचय	–मुनि किशनलाल
प्रेक्षाध्यान : प्राण-चिकित्सा	–साध्वी राजीमती
प्रेक्षाध्यान : स्वर-साधना	–साध्वी रमाकुमारी
प्रेक्षाध्यान : आगम और आगमेतर स्त्रोत	–मुनि धर्मेश

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org